जनवरी–जून, 2020

अंक-03

वन अनुसंधान
ई-पत्रिका

वन अनुसंधान संस्थान
डाकघर– न्यू फॉरेस्ट, देहरादून – 248006 (उत्तराखंड), भारत

संरक्षक
अरुण सिंह रावत
निदेशक
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

उप–संरक्षक
नीलिमा शाह
कुलसचिव
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

<u>संपादक मंडल</u>

मुख्य संपादक
डॉ. मौ. यूसुफ
वैज्ञानिक–जी
वन संरक्षण प्रभाग
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

संपादक एवं समन्वयक
श्री रामबीर सिंह
वैज्ञानिक–डी
विस्तार प्रभाग
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

सहायक संपादक
श्री शंकर शर्मा
सहायक निदेशक (रा.भा.)
हिंदी अनुभाग
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

रचना एवं अभिन्यास
अमोल राऊत
तकनीकी आर्टिस्ट
वर्गीकरण वनस्पति शाखा
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

<u>प्रकाशन</u>
हिंदी अनुभाग
वन अनुसंधान संस्थान
डाकघर– न्यू फॉरेस्ट, देहरादून – 248006 (उत्तराखंड), भारत

(पत्रिका में व्यक्त तथ्य, आँकड़े और विचार रचनाकारों के अपने हैं, सम्पादक मंडल का इनसे सहमत होना अनिवार्य नहीं है।)

निदेशक की कलम से ....

अरुण सिंह रावत
निदेशक
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

अत्यंत हर्ष का विषय है कि वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून की हिंदी "वन अनुसंधान ई–पत्रिका" के अंक–03 का प्रकाशन किया जा रहा है। इस पत्रिका में न केवल संस्थान के शोध कार्यों को स्थान दिया जा रहा है अपितु भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद के अन्य संस्थानों एवं केन्द्रों के वानिकी क्षेत्र में विभिन्न शोध रचनाएँ/लेखों को भी पत्रिका में उचित स्थान दिया जा रहा है। हिंदी में प्रकाशित इन लेखों से जन सामान्य एवं पाठकवर्ग अवश्य लाभान्वित होगें। हमारे देश में अनेक भाषाएं एवं बोलियाँ बोली जाती हैं लेकिन हिंदी हमारी राष्ट्रभाषा है। हिंदी का प्रचार–प्रसार हमारे देश में लिखित एवं मौखिक रूप से व्यापक रूप में होता है। हिंदी संघ की राजभाषा के साथ–साथ जन–संपर्क भाषा का भी कार्य करती है। हिंदी के प्रचार–प्रसार का दायित्व केवल संवैधानिक ही नहीं अपितु हमारा नैतिक कर्तव्य भी है। मेरी कामना है कि "वन अनुसंधान ई–पत्रिका" को अधिक से अधिक पाठक मिलें और पत्रिका का विकास उत्तरोत्तर होता रहे।

मैं, पत्रिका से जुड़े संपादक मंडल तथा सभी लेखकों को उनके अथक प्रयास एवं उच्च स्तरीय लेखों के योगदान के लिए आभार प्रकट करता हूँ तथा पत्रिका के सफल प्रकाशन एवं उज्जवल भविष्य की कामना करता हूँ।

अरुण सिंह रावत
निदेशक

कुलसचिव की कलम से ....

नीलिमा शाह
कुलसचिव
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून द्वारा वानिकी से संबंधित वानिकी शोधों/लेखों/रचनाओं को वन अनुसंधान ई–पत्रिका" में प्रकाशित किया जा रहा है, यह अत्यंत हर्ष का विषय है। भारत बहुभाषी राष्ट्र है। विशेष रूप से यहाँ अलग–अलग राज्यों में अलग–अलग भाषाएं बोली जाती हैं। ऐसे में हिंदी जनसंपर्क की भाषा के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

आज का युग आधुनिक विज्ञान का युग है। ऐसे में विज्ञानियों/शोधार्थियों द्वारा किए गए शोध को अंग्रेजी भाषा में लिखकर समेटना अधिक हितकर नहीं हो सकता, अपितु किए गए शोधों का सामान्य जन तक हिंदी भाषा के माध्यम से आसानी से प्रचार–प्रसार हो सकता है। हिंदी भारत की जनभाषा भी है और जन–सम्पर्क की भाषा भी है। इस बात को ध्यान में रखते हुए वन अनुसंधान संस्थान द्वारा किया जा रहा यह उत्कृष्ट कार्य अत्यंत सराहनीय है।

मैं इस अंक के अधिकतम प्रचार–प्रसार की कामना करती हूँ इसके लिए मैं पत्रिका से जुड़े सभी सदस्यों का भी आभार व्यक्त करती हूँ।

सादर धन्यवाद।

नीलिमा शाह
कुलसचिव

मुख्य संपादक की कलम से ....

डॉ॰ मौ. यूसुफ, वैज्ञानिक–जी
वन संरक्षण प्रभाग
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

अत्यंत हर्ष का विषय हैं कि 'वन अनुसंधान ई–पत्रिका' के अंक–03 का प्रकाशन किया जा रहा है। इस पत्रिका का मुख्य उद्देश्य हिंदी के माध्यम से वानिकी से संबंधित विषयों को जन–साधारण के समक्ष प्रस्तुत करना है। हिंदी में अधिकाधिक प्रचार–प्रसार के कारण यह छमाही पत्रिका व्यापक स्तर पर किसानों, वन कर्मियों, प्रकृति प्रेमियों एवं उनसे जुड़े लोगों को लाभान्वित करेगी।

इस पत्रिका में मुख्य रूप से भारत के विभिन्न क्षेत्रों में पाए जाने वाले वृक्ष, फल, औषधीय पौधों एवं वन संपदा आदि से जुड़े विषयों पर लेख एवं रचनाएं सम्मिलित की गयी हैं। सभी लेख वानिकी एवं कृषि वानिकी क्षेत्रों में नई उम्मीदों एवं संभावनाओं पर आधारित हैं। आशा है कि प्रस्तुत शोधलेखों से कृषक वर्ग, वन कर्मी, विद्यार्थी एवं सामान्य पाठकगण अवश्य लाभान्वित होंगे।

वन्य कीटों से होने वाली क्षति एवं उनका नियन्त्रण, औषधीय पौधों के गुण तथा उनकी खेती से वार्षिक आय में वृद्धि, बाँस की प्रजातियाँ और बाँस उगाना, जंगली अनार, उपयोगी वृक्ष सहजन, औषधीय गुणों से भरपूर महोगनी, गम्हार के प्रमुख कीट तथा महुआ के औषधीय गुणों आदि से संबंधित रोचक लेखों का संकलन इस अंक के प्रमुख आकर्षण हैं।

देश इस वर्ष टिड्डी–दल और कोरोना की विश्व–व्यापी महामारी जैसे दो बड़े संकटों से जूझ रहा है। लम्बे अन्तराल के बाद टिड्डी–दल ने राजस्थान, मध्यप्रदेश तथा उत्तर–प्रदेश में फसलों में भारी तबाही मचायी है। उधर विश्व–व्यापी कोरोना महामारी भी देश में तेजी से फैल रही है। कोरोना संकट के बढ़ते खतरे का वैक्सीन के अभाव में, मास्क और सैनेटाइजर को प्रयोग करना तथा एक–दूसरे से उचित दूरी बनाये रखना ही, इससे बचने का उपाय है। आशा है कि वैज्ञानिकों के कठिन परिश्रम और सतत् प्रयासों से निकट भविष्य में कोरोना की वैक्सीन बनाकर, उसका परीक्षण पूर्ण कर, उसके प्रयोग से इस महामारी पर भी नियन्त्रण पा लिया जाएगा।

वन अनुसंधान ई–पत्रिका में वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून सहित भारतीय वानिकी अनुसंधन एवं शिक्षा परिषद् के अन्य संस्थानों एवं केन्द्रों के वैज्ञानिकों, शोधार्थियों, वानिकी सेवा से जुड़े अधिकारियों एवं कर्मचारियों के लेख समाविष्ट किए जाते हैं।

मैं, इस अंक के सभी सम्मानित लेखकों तथा पत्रिका के संपादन कार्य से जुड़े मेरे सभी सहयोगियों को आभार व्यक्त करता हूँ।

डॉ0 मौ. यूसुफ़

वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून
FOREST RESEARCH INSTITUTE, DEHRADUN

वन अनुसंधान ई–पत्रिका
जनवरी–जून, 2020

विषय सूची

क्र.सं.	विषय	लेखक	पृष्ठ
	निदेशक की कलम से		
	कुलसचिव की कलम से		
	मुख्य संपादक की कलम से		

क्र.सं.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1	ब्यूलः हिमाचल प्रदेश के निचले एवं मध्य पहाड़ी क्षेत्रों के वन चरागाह प्रणालियों में पाया जाने वाला महत्वपूर्ण एवं लोकप्रिय वृक्ष	डॉ. स्वर्ण लता एवं कु. वर्षा	1-2
2	एक बहुमूल्य औषधीय पौधा–कालमेघ	डॉ. ए.के. पाण्डेय एवं श्री अजय गुलाटी	3-5
3	भारत में बाँस की आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण प्रजातियाँ	डॉ. अजय ठाकुर और श्री राकेश प्रकाश	6-9
4	कवकभक्षी कोकसीनेल्लिड बीटिलस् का अद्भूत संसार तथा वानिकी के क्षेत्र में उनकी उपयोगिता	श्री अखिलेश कुमार मिश्रा एवं डॉ. मौ. यूसुफ	10-14
5	पुष्प एवं स्थल सौन्दर्य के लिए बाँस का योगदान	डॉ. प्रियंका ठाकुर, डॉ. ए.के. जोशी, डॉ. अनूप चंद्रा, डॉ. प्रवीण कुमार वर्मा एवं डॉ. ऋतु जैन	15-16
6	*डेकालेपिस हमिल्टोनिः* एक संकटग्रस्त प्रमुख वनोत्पाद	डॉ. पंकज सिंह, श्री प्रवीण एच. चव्हाण, डॉ. जी. आर. एस. रेड्डी, श्री एम.सागर एवं श्री राजेश्वर कोंडा	17-18
7	उत्तराखंड में रिंगाल बाँस की विविधता, वितरण, उपयोगिता एवं संरक्षण	डॉ. प्रवीण कुमार वर्मा, श्री राजेश कुमार मीणा, डॉ. अनूप चंद्रा, सुश्री रंजना नेगी एवं डॉ. प्रियंका ठाकुर	19-23
8	*लिट्सिया ग्लूटिनोसा* (मैदा लकड़ी) एक उपयोगी प्रजाति	डॉ. नव बहार एवं श्री राम गोपाल	24-25
9	मध्य भारत में मौसम के उतार चढ़ाव का सागौन के कीटों की जनसंख्या वृद्धि एवं मेजबान पर संभावित क्षति का प्रभाव	डॉ. पवन कुमार एवं श्री नाहर सिंह मावई	26-29
10	जंगली अनार (*प्यूनिका ग्रेनेट्म*) –एक उत्तम वन्य फल	श्री ज्वाला प्रसाद, सुश्री सोनिका शर्मा, श्री मंजीत कुमार एवं श्री नीरज कुमार	30-31
11	सहजन (*मोरिंगा ओलिफेरा*) – एक बहुउद्देशीय वृक्ष	अनुभा श्रीवास्तव, श्री योगेश कुमार अग्रवाल, श्री रामबीर सिंह एवं श्री अमित कुमार कुशवाहा	32-37
12	महोगनी–इमारती लकड़ी, औषधीय गुणों से भरपूर व कृषिवानिकी के लिए एक महत्वपूर्ण वृक्ष प्रजाति	श्री वेदपाल सिंह	38-39
13	गम्हार (*मेलाइना आरबोरिया*) के प्रमुख कीट	सुश्री पूजा सिंह एवं डॉ. सुधीर सिंह	40-42
14	महुआ–औषधीय, स्वास्थ्यवर्धक एवं व्यापारिक दृष्टिकोण से	श्री राहुल निषाद, श्री आलोक यादव एवं श्री राजकुमार	43-45

ब्यूलः हिमाचल प्रदेश के निचले एवं मध्य पहाड़ी क्षेत्रों के वन चारागाह प्रणालियों में पाया जाने वाला महत्वपूर्ण एवं लोकप्रिय वृक्ष

डॉ. स्वर्ण लता, वैज्ञानिक–सी एवं कु. वर्षा, परियोजना सहायक
हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, पंथाघाटी, शिमला, (हि. प्र.)

परिचयः ब्यूल एक महत्वपूर्ण चारा प्रदान करने वाली वृक्ष प्रजाति है। इसका वैज्ञानिक नाम *'ग्रेवीया ओपटिवा'* है तथा आमतौर पर इसे 'ब्यूल' के नाम से जाना जाता है। इसके आलावा इसे बिमल, बयुनल, बीहुल, धमन के नाम से भी जाना जाता है।

चित्र–01ः ब्यूल

यह वृक्ष *तिलिएसी* कुल से सम्बंध रखता है। यह वृक्ष वन क्षेत्रों में बहुत कम देखा जाता है तथा इसे अक्सर गाँव के आस–पास के क्षेत्रों एवं खेतों के किनारों पर देखा जा सकता है। यह एक मध्यम आकार का सदाबहार वृक्ष है जिसकी लम्बाई लगभग 9–12 मीटर एवं घेरा 80 से. मी. होता है। शाखाएं सपाट और फीके भूरे रंग की होती हैं। छाल मोटी, खुरदरी और गहरे भूरे रंग के होती है। पत्तियां अंडाकार, नुकीली एवं 5–10 से. मी. लंबी होती हैं। पत्तियों की ऊपरी सतह खुरदरी और रोएंदार एवं निचली सतह नरम और सपाट होती हैं। यह वृक्ष बहुत ही कम अवधि मार्च के महीने में ही पत्ती रहित रहता है। पुराने पत्ते मार्च–अप्रैल में गिर जाते हैं और नए पत्ते अप्रैल–मई में आते हैं। फूल पीले रंग के होते हैं जो अक्सर डंठल पर 1–8 के समूह में देखे जाते हैं। फूल नई पत्तियों के आने के समय देखे जाते हैं और इसके बाद फलों का गठन होता है। फल पिछले साल की शाखाओं पर आते हैं। अविकसित फल हरे रंग के होते हैं पर यह पकने पर काले रंग के हो जाते हैं। इसके फल खाए जाते हैं तथा इन वृक्षों में फूलों और फलों का विकास अप्रैल–नवम्बर की समयावधि में होता है। इन फलों में एक समय में 2–4 बीज होते हैं तथा एक किलोग्राम में लगभग 12000–15000 बीज पाए जाते हैं।

वितरण एवं वासः विश्व में यह भारत, नेपाल, पाकिस्तान एवं भूटान में समुद्रतल से 500–2500 मीटर की ऊँचाई पर पाया जाता है। यह भारत की स्वदेशी प्रजाति है तथा उप उष्णकटिबंधीय क्षेत्र का वृक्ष है। भारत में यह जम्मू–कश्मीर, उत्तराखंड, हिमाचल प्रदेश, पंजाब एवं सिक्किम में पाया जाता है। हिमाचल प्रदेश में यह सिरमौर, चम्बा, काँगड़ा, ऊना, बिलासपुर, हमीरपुर, सोलन एवं शिमला जिलों में पाया जाता है। इस वृक्ष के विकास के लिए 10–38 °C तापमान और सालाना 1200–2500 मि. मी. बारिश की आवश्यकता होती है। यह विभिन्न तरह की मिट्टी में आसानी से उगने में सक्षम है परन्तु रेतीली दोमट मिट्टी एवं पर्याप्त नमी इसके विकास के लिए उपयुक्त है।

पुनर्जनन एवं रोपण तकनीकः इस वृक्ष का पुनर्जनन बीजों, कलमों और नर्सरी में उगाए गए पौधों के रोपण के द्वारा होता है। इसका बीजावरण सख्त होता है तथा अंकुरण के लिए बीजों को 12 घंटे से अधिक समय तक पानी में भिगोने की आवश्यकता होती है। नर्सरी में तैयार किए गए 1 साल के पौधों का प्रतिरोपण जुलाई के महीने में 30 30 30 से. मी. के गड्ढों में 2 2 मी., 3 3 मी. की दूरी पर बरसात व सर्दियों के दौरान किया जाता है। खेतों में एक पंक्ति में रोपण हेतु 4–5 मी. की दूरी रखी जाती है। वर्षा पर निर्भर क्षेत्रों की तुलना में सिंचित खेतों के मेढ़ों पर इसका विकास अच्छा होता है। रोपण के उपरान्त, रोपित क्षेत्र को चराई और आग से सुरक्षित रखने की भी अत्यधिक आवश्यकता होती है। पौधों को गड्ढों में रोपित करते समय जैविक खाद के प्रयोग से अनुपजाऊ क्षेत्रों में भी इसकी वृद्धि की प्रक्रिया को बढ़ाया जा सकता है। इसकी उचित वृद्धि के लिए इसे तेज रोशनी और सीधी धूप की आवश्यकता होती है। यह हल्के सूखे और पाले को सहने की क्षमता रखता है परन्तु अत्यधिक पाला छोटे नए पौधों के लिए नुकसानदायक होता है।

कीट, बीमारियाँ एवं प्रबंधनः यह प्रजाति अन्य वृक्षों की तुलना में कीटों एवं रोगाणुओं से कम प्रभावित होती है परन्तु मुख्यतः *डायकरिसिया इंडिका, केशमिना टिबीएलिस* के लार्वे तथा *सीरमबिसिडी* कुल के लार्वे इसकी पत्तियों और सूखी लकड़ी में सुराख़ कर देते हैं। इसके अलावा फफूंद *कुरवुलेरिया लूनाटा* भी इसके पत्तियों में स्थापित होकर इसे नुकसान पहुंचाती हैं। कीटनाशकों के प्रयोग से इस वृक्ष को कीटों एवं रोगाणुओं के प्रभाव से बचाया जा सकता है।

उत्कृष्ट चारा एवं पोष्टिकता: हिमाचल प्रदेश में इसकी पत्तियों का मूल्यांकन उत्कृष्ट चारे के रूप में किया गया है क्योंकि इसकी पत्तियों में प्रोटीन और पौष्टिक तत्व भारी मात्रा में पाए जाते हैं तथा क्षार मौजूद नहीं रहता है। इसकी पत्तियों की इसी गुणवत्ता के कारण किसान इसकी तुलना बरसीम एवं लोबिया के चारे से करते हैं। पत्तियों को आमतौर पर सर्दियों में चारे के रूप में अधिक उपयोग में लाया जाता है और किसानों द्वारा सर्दियों में हरी घास के अभाव को पूरा करने के लिए इस वृक्ष की टहनियों को काट कर पशुओं को खिलाया जाता है। इसकी हरी पत्तियों में शाखाओं के कुल वज़न का 70 भाग रहता है। इसकी पत्तियों में प्रोटीन और पौष्टिक तत्वों की मात्रा, पत्तियों के संग्रह स्थान, संग्रह समय एवं मौसम पर निर्भर करती है तथा पत्तियों में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटेशियम एवं सल्फर की मात्रा पत्तियों की परिपक्वता के साथ कम होती है तथा कैल्शियम, मैग्निशियम और सोडियम की मात्रा बढ़ती है। इसलिए अक्तूबर–नवम्बर पौष्टिक चारा एकत्रित करने का सबसे अच्छा समय है। एक परिपक्व वृक्ष से लगभग 15–25 कि. ग्रा. हरा चारा एकत्रित किया जा सकता है।

चित्र–02–05: हिमाचल प्रदेश के निचले एवं मध्य पहाड़ी क्षेत्रों में ब्यूल के उपयोग

उपयोग: ब्यूल को हिमाचल के निचले एवं मध्य पहाड़ी क्षेत्रों में महत्वपूर्ण कृषि वानिकी वृक्ष के रूप में जाना जाता है। यह पारंपरिक रूप से चारे, ईंधन और रेशे के लिए किसानों द्वारा फसल वाले खेतों के मेढ़ों और गाँव के निकट खुले वन क्षेत्रों में उगाया जाता है। इसकी लकड़ी सफ़ेद, सख्त, लचीली एवं भारी होती है तथा लकड़ी कृषि सामग्री, उपकरणों के हैंडल, खम्बें, फ्रेम, धनुष इत्यादि बनाने एवं ईंधन के रूप में प्रयोग होती है। इसकी लचीली शाखाएं टोकरियाँ बनाने के काम भी आती हैं। इसके अतिरिक्त पानी में भिगोई हुई शाखाओं को पीट–पीट कर रेशा निकाला जाता है। छाल से निकले रेशे से कागज और रस्सी बनाई जाती है। रस्सी मुलायम, मजबूत और नमी रोधक होती है। इसके रेशे से मशाल भी बनाई जाती है और इन मशालों का उपयोग रात्रि के समय एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने के लिए किया जाता है। रेशों को निचोड़ कर पेस्ट भी बनाया जाता है और इसे गर्म पानी के साथ मिलाकर बालों को धोने के लिए शैम्पू के रूप में प्रयोग किया जाता है। इस वृक्ष में बहुत से औषधीय गुण भी पाये जाते हैं और इसे अतिसार, मलेरिया, पीलिया, बुखार, चेचक और आँतों से सम्बंधित समस्याओं के उपचार के लिए उपयोग में लाया जाता है। इसकी ताजी पत्तियों को पानी में उबाल कर काढ़ा बनाया जाता है जोकि जोड़ों के दर्द को दूर करता है। इसके फलों का व्यापारिक महत्व भी है क्योंकि इसके फल बुखार, त्वचा एवं पेट के रोगों के उपचार हेतु प्रयोग में लाये जाते हैं। बीजों के पेस्ट को दूध के साथ मिलाकर पीने से गर्भवती महिलाओं का प्रसव सरलता से हो जाता है।

संरक्षण एवं प्रबंधन: ब्यूल को हिमाचल प्रदेश के निचले एवं मध्य पहाड़ी क्षेत्रों का सबसे संवहनीय चारा वृक्ष माना जाता है क्योंकि यह वृक्ष न केवल किसानों की चारा, ईंधन और औषधीय जरूरतों को पूरा करता है अपितु अन्य पर्यावरणीय सेवाएँ भी प्रदान करता है। यह वृक्ष भूमि के कटाव को रोकने के साथ–साथ खेतों में नमी भी बनाए रखता है तथा इसकी पत्तियों की छाया से फसलों को तेज़ धूप के नुक्सान से बचाया जा सकता है। इस वृक्ष को अत्यधिक संरक्षण एवं प्रबंधन की आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि यह वृक्ष अत्यधिक छंटाई एवं कटाई को सहन करने एवं नई कोपलें उत्पन्न करने की अत्यधिक क्षमता रखता है। इसके इसी गुण के वजह से यह स्वंय को आसनी से किसी भी परिस्थिति में स्थापित कर लेता है इसलिए कृषि फसल तथा चारे की कम उपलब्धता वाले क्षत्रों में कृषिवानिकी के माध्यम से लोगों की आजीविका में सुधार हेतु इस वृक्ष की संभावनाएं अपार हैं। इन वृक्षों की अत्यधिक महत्ता को देखते हुए इस प्रजाति के वृक्षारोपण को बढ़ावा देने की आवश्यकता है ताकि इससे लोगों की आजीविका के साथ–साथ अन्य पर्यावरणीय सेवाएं भी प्राप्त होती रहें ।

डॉ. स्वर्ण लता
वैज्ञानिक–सी

एक बहुमूल्य औषधीय पौधाः कालमेघ

डॉ. ए.के. पाण्डेय, वैज्ञानिक–जी एवं श्री अजय गुलाटी, सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी,
विस्तार प्रभाग, वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

मानव प्राचीन काल से विभिन्न रोगों के निवारण हेतु अनेक पेड़–पौधों का उपयोग करता रहा है। सदियों से मानव ने अपने पोषण के लिए प्रकृति का शोषण किया है। पहले यह औषधीय पौधे अपने प्राकृतिक परिवेश (वनों) में आसानी से उपलब्ध हो जाते थे परन्तु बढ़ती मांग के कारण वनों से इन औषधियों की उपलब्धता कम हो गयी है। इसका मुख्य कारण अवैज्ञानिक विदोहन है, जिसके कारण कई बहुमूल्य औषधीय पौधे अदृश्य हो चुके हैं तथा कुछ अदृश्य होने की कगार पर हैं। कई महत्वपूर्ण औषधीय पौधे जैसे सर्पगंधा, जटामांसी, वाइविडंग, गुड़मार, कालमेघ, चिरायता आदि विलुप्त होने की कगार पर हैं। इन औषधीय पौधों को कृषिकरण करके ही बचाया जा सकता हैं। साथ ही औषधीय पौधों की खेती से किसानों की आर्थिक स्थिति भी सुधर सकती है तथा इसकी मांग को पूरा कर वह आत्मनिर्भर बन सकते हैं। उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, हमें प्रकृति की इस अमूल्य धरोहर के संरक्षण तथा व्यवसायिक लक्ष्यों की पूर्ति के लिए वैज्ञानिक ढंग से इनकी खेती को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है।

औषधीय पौधों की वर्तमान मांग और आपूर्ति के परिदृश्य का आकलन करने के लिए राष्ट्रीय औषधीय पादप बोर्ड, आयुष मंत्रालय, भारत सरकार ने भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून के सहयोग से भारत के औषधीय पौधों के बाजार का व्यापक सर्वेक्षण किया है। वर्ष 2014–15 के लिए औषधीय पौधों की वाणिज्यिक मांग का अनुमान 5,12,000 मीट्रिक टन पाया गया है। जिसकी बाजार कीमत रूपये 5500 करोड़ आंकी गई है। औषधीय पौधों का अनुमानित निर्यात 2014–15 में 1,34,500 मीट्रिक टन अनुमानित किया गया है। घरेलू औषधीय उद्योग द्वारा अनुमानित खपत 1,95,000 मीट्रिक टन 2014–15 अनुमानित की गई है। हर साल ग्रामीण परिवारों द्वारा 1,67,500 मीट्रिक टन औषधीय पौधों का दवाईयों में प्रयोग किया जाता है। देश में लगभग 1178 औषधीय पौधों की प्रजातियों का व्यापार किया जाता हैं, जिसमें से 242 प्रजातियों का प्रयोग 100 मीट्रिक टन प्रति वर्ष से अधिक किया जाता है। इन महत्वपूर्ण औषधीय पौधों की मांग को केवल खेती करके ही पूरा किया जा सकता है। किसान परिवार इसकी खेती कर लाभ कमा सकते हैं।

परिचयः भारतीय चिकित्सा पद्धति में कालमेघ एक दिव्य गुणकारी पौधा है। इसे अनेक नामों जैसे कडू चिरायता, हरा चिरायता व किंग बिटर्स के नाम से भी जाना जाता है। इसका वानस्पतिक नाम *एन्ड्रोग्राफिस पैनीकुलेटा* तथा यह *एकेन्थेसी* कुल का पौधा है। यह औषधीय पौधा भारत, चीन, बंगलादेश, थाईलैण्ड तथा श्रीलंका में पाया जाता है। भारत में यह उड़ीसा, बिहार, पश्चिम बंगाल, मध्य प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, उत्तराखण्ड, कर्नाटक आदि में पाया जाता है। यह सीधा बढ़ने वाला शाकीय पौधा है। इसकी लम्बाई लगभग 50 से.मी. से 80 से.मी. तक होती है। कालमेघ की शाखाएँ पतली, पत्ते हरे तथा लम्बे होते हैं। फूल गुलाबी रंग के तथा फैली हुई शाखाओं पर लगते है। इसकी फलियाँ छोटी होती हैं। फलियों में छोटे व भूरे रंग के बीज लगते हैं। इसका स्वाद कड़वा होता है। इसमें अनेक रासायनिक घटक पाए जाते हैं, जिनका उपयोग औषधीय निर्माण में किया जाता है। इनमें से प्रमुख घटक एन्ड्रोग्रेफोलाइड, *डी–आक्सी एन्ड्रोग्रेफोलाइड*, कालमेघिन एवं पैनीकोलिन इत्यादि हैं। इसके औषधीय गुण इन्ही रसायनों के कारण होते हैं।

औषधीय उपयोगः कालमेघ एक दिव्य गुणकारी औषधीय पौधा है। इसकी पत्तियों का उपयोग पीलिया, ज्वरनाशक, रक्तशोधक, पेचिश, सिरदर्द, कृमिनाशक तथा पेट की बीमारियों में बहुत लाभ देता है। इसका उपयोग यकृत सम्बन्धित रोगों को दूर करने में प्रभावी है। इसमें हेपटो–सुरक्षात्मक और हेपेटो–उत्तेजक गुण हैं जो यकृत की रक्षा करते हैं। बढ़े हुए यकृत को कम करता है और वायरल हेपेटाइटिस का इलाज भी कर सकता है। पाचन तंत्र को अधिक लचीला बनाता है। यह पाचन में सुधार, पुरानी कब्ज और गैस का उपचार करता है। यह रक्त प्रवाह को बनाये रखने में सहायता करता है। साथ ही खून के थक्के जमने से रोकता है। इसके उपयोग से हार्ट अटैक का खतरा कम हो जाता है। यह रक्त शर्करा के स्तर को कम कर देता है और एक प्रभावी मधुमेह उपचार है। यह कैंसर विरोधी कैंसर एजेंट के रूप में कार्य करता है और कैंसर कोशिका गठन को रोकता है। इसलिए यह एक शक्तिशाली कैंसर निवारक दवा के रूप में कार्य करता है। यह प्रतिरक्षा प्रणाली को ठीक करता है। यह अनिद्रा, बुखार, नाक निकासी, शरीर में दर्द, गले में दर्द और बुखार आदि के उपचार में सहायता करता है। इसमें एंटी–वायरल और एंटी–बैक्टीरियल गुण है। यह मलेरिया, डेंगू और टाइफाइड के लिए एक प्रभावी उपचार है। यह निमोनिया, तपेदिक और ब्रोंकाइटिस जैसे श्वसन की स्थिति के प्रबंधन में प्रभावी है। यह रक्त से विषाक्त पदार्थ को हटाकर रक्त शुद्ध करता है जो मुहांसे जैसे कई त्वचा विकारों को ठीक करने में सहायता करता है। इसका उपयोग पारपंरिक आयुर्वेद में कुष्ठ रोग, गोनोरिया, फोड़े और संक्रमण जैसे अन्य त्वचा के रोग उपचार करने के लिए प्रयोग किया जाता है। यह जलने की उत्तेजना में राहत देता है और घावों और अल्सर के उपचार में त्वरित सुधार करता है और साथ ही खुजली को कम करता है। इसका उपयोग त्वचा एलर्जी के साथ प्रभावी रूप से सूजन को कम करने में किया जाता है। यह आँतों के कीड़ों को नष्ट करता है। कुल मिलाकर स्वास्थ्य टॉनिक के रूप में कार्य करता

है। कालमेघ शारीरिक ऊर्जा के साथ–साथ जीवन शक्ति को सुदृढ़ करता है और सामान्य कमजोरी को दूर करता है। कालमेघ में प्रतिरोधात्मक क्षमता बढ़ाने वाले गुण पाये जाते हैं। यह मलेरिया बुखार के लिए रामबाण दवा है।

कालमेघ की खेतीः कालमेघ उष्ण कटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय जलवायु का पौधा है। यह प्राकृतिक रूप से नमी अथवा छाया वाले स्थानों में पाया जाता है। फसल का अच्छा विकास बलुई दोमट भूमि में होता है। इसके अलावा पथरीली, लेटराइट एवं नमी वाली भूमि में सफलता पूर्वक उगाया जा सकता है। इसकी खेती के लिए मिट्टी का पी.एच. मान 6 से 8 के बीच होना चाहिए। इसके सभी भागों (पंचाग) तना, पत्ती, फूल, बीज एवं जड़ का उपयोग औषधी के रूप में होता है। इसकी खेती के लिए औसत वर्षा 80 से 100 से.मी. होनी चाहिए। इस औषधीय पौधे को न्यूनतम तापमान 5 $^{\circ}C$ से 15 $^{\circ}C$ एवं अधिकतम तापमान 35 $^{\circ}C$ से 45 $^{\circ}C$ में अच्छी तरह उगाया जा सकता है। इसके पौधे वर्षा एवं ग्रीष्म ऋतु में आसानी से विकास करते हैं। परन्तु सर्दियों के मौसम में पाला नुकसान करता है। इसकी अच्छी पैदावार के लिए खेत में जल भराव की समस्या नहीं होनी चाहिए। कालमेघ को पॉपलर, सफेदा (यूकेलिप्टस), आँवला, मीलिया, सागौन व अन्य वृक्ष प्रजातियों के साथ अन्तरवर्तीय फसल के रूप में लगाया जा सकता है।

चित्र–01: कालमेघ का पौधा

चित्र–02: फूल

पौधा तैयार करनाः कालमेघ की खेती करने से पूर्व इसकी पौध तैयार की जाती है। कालमेघ की पौध को नर्सरी में तैयार करते हैं। इसकी नर्सरी छायादार स्थान में बनानी चाहिए। सबसे पहले नर्सरी में क्यारियां/बैड (1 10 मी.) बनाकर पुरानी सड़ी खाद डालते हैं। इसका बीज बहुत छोटे आकार का होता है तथा एक हैक्टेयर की पौध के लिये 500 ग्राम बीज की आवश्यकता होती है। बीज की बुवाई मई में करना उचित होती है। बीजों को बोने से पहले 0.2 प्रतिशत बेविस्टीन नामक फफूंदनाशक से उपचारित करना चाहिए। इसके बीज को रोपणी के बैड में बोने से पहले अच्छी छनी हुई रेत (पाँच गुना) मिला लेना चाहिए, जिससे बीजों का वितरण समान हो। बीज की बुवाई के बाद क्यारियों में उपयुक्त समय पर सिंचाई करते रहना चाहिए। इसकी पौध रोपाई के बाद 35 से 45 दिन में तैयार हो जाती है। इसके पश्चात् खेतों में रोपित किया जाता है।

पौधों की रोपाई, सिंचाई एवं अन्य प्रबंधनः वर्षा से पूर्व मई–जून में खेत को गहरा जोतना चाहिए उसके बाद खेत में पुरानी गोबर की सड़ी हुई खाद को 20 टन प्रति हैक्टेयर की दर से मिट्टी में डालना चाहिए। इसके बाद खेत में पानी छोड़ना चाहिए तथा खेत को चार पाँच बार जोतकर समतल करना चाहिए। इसकी अच्छी खेती के लिए कालमेघ के पौधों की रोपाई जुलाई माह में करनी चाहिए। खेत पर इसकी रोपाई 30 सेमी. 30 सेमी. की दूरी पर करनी चाहिए। रोपाई के तुरन्त बाद हल्की सिंचाई करनी चाहिए। यह एक वर्षा ऋतु की फसल है, इसलिए सिंचाई की आवश्यकता अधिक नहीं होती है। परन्तु वर्षा न होने पर इसमें प्रारम्भिक चरण में 5–6 दिन के अंतराल पर सिंचाई करनी चाहिए, इसके बाद एक सप्ताह के अंतराल के बाद सिंचाई करने की आवश्यकता होती है। इसकी अच्छी खेती के लिए इसमें वर्मी–कम्पोस्ट, हरी खाद आदि का उपयोग भी किया जा सकता है। अच्छी उपज के लिये नाइट्रोजन की 80 किग्रा, फास्फोरस की 30 किग्रा एवं पोटाश की 30 किलोग्राम मात्रा खेत तैयार करते समय प्रयोग करना चाहिए। नाइट्रोजन का प्रयोग दो भागों में विभाजित करके 35 से 45 दिन के अंतर पर करना चाहिए। कालमेघ में रोपाई के बाद खरपतवार की समस्या होती है। खरपतवार नियत्रंण करने के लिये निराई–गुड़ाई करना बहुत आवश्यक होता है। पौध लगाने के 20 दिन बाद खेत की निराई कर दें। उसके 20 दिन के अंतराल में दो बार गुड़ाई और कर दें जिससे पौधों का विकास सही प्रकार से हो तथा अच्छी पैदावर प्राप्त हो सके। सामान्यतः इसमें रोगों का प्रभाव नहीं या बहुत कम होता है। पौधों पर किसी भी प्रकार के कीट के प्रभाव को खत्म करने के लिये नीम की खली व जैविक कीटनाशक का छिड़काव उपयुक्त मात्रा में करना चाहिए।

फसल की कटाईः इसकी फसल 4–5 माह में तैयार हो जाती है। इसकी कटाई फूल निकलते समय करनी चाहिए। इसे जमीन से 10 से 15 से.मी. ऊपर से काटना चाहिए। यदि खेत में नमी ठीक है तो इसकी दो कटाई ली जा सकती हैं। इस समय इसमें पाया जाने वाला तत्व *एन्ड्रोग्रेफोलाइड* अधिकतम मात्रा में होता है। पौधे को काटकर छाया में सुखाना चाहिए। इसके पश्चात फसल को पलटते रहना चाहिए। पलटते समय ध्यान रखना चाहिए कि पत्तियाँ कम से कम जमीन में गिरें। कालमेघ की गुणवत्ता बनाए रखने के लिए किसान भाईयों को अच्छी किस्म के बीज का चुनाव करना चाहिए। साथ ही ठीक प्रकार से छाया में सुखाकर हवादार, नमी रहित स्थान में भण्डारण करना चाहिए। कालमेघ फसल का भाव उसमें पाए जाने वाले तत्व *एन्ड्रोग्रेफोलाइड* की मात्रा के हिसाब से निर्धारित किया जाता है। किसान अच्छी गुणवत्ता का उत्पाद पैदा कर अधिक भाव प्राप्त कर सकता है। पूरे सूखे पौधों को जूट की बोरियों में भरकर रखना चाहिए। इसमें एक समस्या परिवहन की आती है क्योंकि इसके सूखे पौधे अधिक मात्रा में होते हैं जो कि वाहन में अधिक नहीं आ पाते। यदि उपज को दूर स्थान में भेजना हो तो परिवहन खर्चा अधिक मात्रा में आ जाता है। अतः उपज की बिक्री निकट बाजार में करनी चाहिए।

उपज एवं आय–व्यय : कालमेघ की खेती को अच्छे प्रकार से

किया जाए तो एक हैक्टेयर से 35 से 40 कुन्तल उत्पाद (सूखी शाखायें पत्तियों सहित) और 20 कि.ग्रा. बीज प्राप्त होता है। बाजार में सूखी शाखायें पत्तियों सहित का भाव रू. 5000 प्रति कुन्तल तथा बीज का भाव रू. 1000 प्रति किलो है। कालमेघ की कुल उपज से रू. 1,30,000/हैक्टेयर शुद्ध लाभ प्राप्त होता है। तथा इसकी आय–व्यय का विवरण निम्न प्रकार से है:

कालमेध के आय व्यय का विवरण (प्रति हेक्टयर)

भूमि की तैयारी	–	रू. 10000/–
गोबर की खाद	–	रू. 12000/–
पौधशाला में पौध बनाने का खर्चा बीज सहित	–	रू. 6000/–
पौध को खेत में रोपित करने का खर्चा	–	रू. 12000/–
निराई–गुड़ाई	–	रू. 8000/–
पौधों की सिंचाई	–	रू. 5000/–
रासायनिक खाद एवं कीटनाशक	–	रू. 2000/–
फसल का काटने एवं सुखाने का खर्चा	–	रू. 5000/–
विविध खर्चा	–	रू. 5000/–
कुल लागत	–	**रू. 65000/–**
उत्पादन		
कालमेघ की सूखी शाखाएं पत्तियों सहित	–	35 कुन्तल
कालमेघ के बीज	–	20 किलोग्राम
कालमेघ की सूखी शाखाएं पत्तियों सहित–मूल्य (प्रति कुन्तल)	–	रू. 5000/–
कालमेघ की बीज–मूल्य (प्रति कि.ग्रा.)	–	रू. 1000/–
कालमेघ की सूखी शाखाएं पत्तियों सहित–कुल मूल्य(35 कु. 5000 रू.)	–	रू. 175000/–
कालमेघ की बीज कुल मूल्य(20 कि.ग्रा. 1000 रू.)	–	रू. 20000/–
कुल लाभ	–	रू. 195000/–
शुद्ध लाभ (रू. 195000–रू. 65000)	–	**रू. 130000/–**

डॉ.ए.के. पाण्डेय
वैज्ञानिक–जी

भारत में बाँस की आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण प्रजातियाँ

डॉ. अजय ठाकुर, वैज्ञानिक–एफ एवं श्री राकेश प्रकाश, तकनीकी अधिकारी
आनुवंशिकी और वृक्ष सुधार विभाग, वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

पूरे विश्व में बाँस की 70 जेनेरा के अंतर्गत लगभग 1250 प्रजातियाँ पायी जाती हैं, जिनमें से भारत में 22 जेनेरा के अंतर्गत 136 प्रजातियाँ पायी जाती हैं तथा इसका तीसरा स्थान है। भारत में बाँस के तहत पूरे विश्व में सबसे बड़ा क्षेत्र (13. 96 मिलियन हेक्टेयर) है। बाँस घास वाली लकड़ी होती है और दक्षिण-पूर्व एशिया और उष्णकटिबंधीय अमेरिका के कुछ हिस्सों की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है क्योंकि वे भोजन, आवास, निर्माण सामग्री, फर्नीचर, कृषि सहायता आदि हर आजीविका की चीजें प्रदान करते हैं (ठाकुर एवं अन्य, 2016 अ)। बाँस में उत्कृष्ट गुण होते हैं जैसे : दृढ़ता, सीधा और हल्कापन, असाधारण मजबूती, आकार की सीमा, बहुतायत, सहज वृद्धि और परिपक्वता हेतु कम समय आदि उन्हें विभिन्न प्रयोजनों के लिए उपयुक्त बनाते हैं (त्रिपाठी एवं अन्य, 2008)। एक अध्ययन के अनुसार बाँस का अंतर्राष्ट्रीय बाजार 04 लाख 20 हजार करोड़ रु. का है जबकि भारतीय बाज़ार में बाँस व्यवसाय 30 हज़ार करोड़ रु. तक का है। बाँस का रोपण बंजर भूमि, नदी के किनारे, ऊँची व ढालदार स्थानों पर किया जा सकता है जिसकी खेती 3 से 5 वर्ष के चक्र में ली जा सकती है, लेकिन सामान्य से अम्लीय पीएच के साथ उपजाऊ भूमि में अच्छी उत्पादकता होती है। बाँस गैर प्रकाष्ठ प्रजाति है, जिसको समुदाय अपनी निजी भूमि या सामुदायिक भूमि पर उगाकर बिना रोक टोक के काट सकता है तथा व्यापार कर सकता है।

चित्र–01: कटाई के बाद संग्रहित बाँस

व्यावसायिक रूप से भारत में सबसे महत्वपूर्ण प्रजातियाँ *बंबूसा बालकोआ, बी. बम्बोस, बी. न्यूटेन्स, बी. पैल्लिडा, बी. पॉलिमोर्फा, बी. टुल्डा, डैन्ड्रोकेलेमस ब्रैंडिसिइ, डी. जाइगैन्टियस, डी. हैमिल्टोनाई, डी. स्ट्रिक्टस, मैलोकाना बेस्सीफेरा,* हैं। *ओक्लैंड्रा ट्रावनकोरिका, शाइजोस्टैकियम डुलोआ* और *थ्रीसोस्टैचिस ओलिवेरी*। इनमें से कुछ का वर्णन आगे किया जा रहा है।

बैम्बूसा बालकोआ (*Bambusa balcooa*)

स्थानीय नामः इस बाँस को विभिन्न क्षेत्रों में अलग–अलग नामों से जाना जाता है जैसे आसाम में भालूका, पश्चिम बंगाल में बाल्कू, उत्तरी बंगाल में बोरो, मणिपुर में लीवा तथा त्रिपुरा में बाराक।

पर्यावास तथा वितरणः यह प्रजाति 600 मी. तक की ऊँचाई के क्षेत्रों में पायी जाती है। यह बाँस उत्तरपूर्वी भारत, बिहार, झारखण्ड, उत्तराखण्ड तथा पश्चिम बंगाल में पाया जाता है। साथ ही यह भारत के अन्य हिस्सों में बहुतायत से उगाया जाने लगा है।

कल्म, पुष्पण व्यवहार एवं चक्रः यह बाँस 30 मी. तक लम्बा गहरा हरा तथा मोटा भित्ति वाला होता है तथा निचले तने पर शाखाएँ होती हैं। पुष्पण विरल, परन्तु बीज नहीं बनता है। ऐसा देखा गया है कि जिन कल्म में पुष्पण होती है वही तना सूखता है और बाँस का बीड़ा ज़िंदा रहता है।

उपयोगः इस बाँस का मुख्यतः उपयोग गृहनिर्माण, सीढ़ी बनाने तथा विभिन्न दस्तकारी में किया जाता है। उत्तम बायोमास के कारण इसके अन्य औद्योगिक उपयोग भी हैं।

बैम्बूसा बम्बोस (*Bambusa bambos*)

स्थानीय नामः इस बाँस को आसाम में कोटोहा, पश्चिम बंगाल में बहोर, केरल में इल्ली, मूला, पटिटल, उड़ीसा में कांटा बाँस, पंजाब में नल बाँस, मणिपुर में सनैबो, तमिलनाडु में मुगिल तथा आंध्र–प्रदेश में विदुरू के नाम से जाना जाता है

पर्यावास तथा वितरणः यह लगभग पूरे देश में 1000 मी. तक ऊँचाई वाले भागों में पाया जाता है। इसके तने तथा शाखाओं पर काँटा होना इसकी प्रमुख पहचान होती है।

कल्म, पुष्पण व्यवहार एवं चक्र: यह बाँस 30 मी. तक लम्बा होता है जो गहरा हरा तथा मजबूत होता है। पुष्पण चक्र 40 से 60 वर्ष में होता है।

उपयोग : विशेषकर इस बाँस का उपयोग पेपर बनाने, हस्तशिल्प आदि में किया जाता है। इससे वंशलोचन नामक दवा भी बनती है।

बैम्बूसा न्यूटेन्स (*Bambusa nutans*)

स्थानीय नाम: *बैम्बूसा न्यूटेन्स* को भी अलग–अलग जगह अलग–अलग नामों से जाना जाता है जैसे असम में बिधुली, मुकिया, उत्तर प्रदेश में माला, सिक्किम में मालो, माहि बाँस, उड़ीसा में बड़िया बाँस, त्रिपुरा में काली, बैंग, मालका, मणिपुर में उतांग, नागालैंड में रंगाजूमी, उत्तराखंड में चाइ बाँस के नाम से प्रसिद्ध है।

पर्यावास तथा वितरण : यह बाँस मुख्यतः हिमाचल प्रदेश , उत्तरी पूर्वी भारत, उड़ीसा, सिक्किम, बिहार, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल आदि में पाया जाता है। यह लगभग 500 से लेकर 1500 मी. तक कि ऊँचाई वाले भागों में होता है।

कल्म, पुष्पण व्यवहार एवं चक्र: यह बाँस लगभग 20 मी. तक लम्बा, गहरा हरा तथा सीधा व चिकना होता है। इसके तनों पर शाखाएँ भी होती हैं इसका पुष्पण छिटपुट तथा कभी–कभी समूह में होता है।

उपयोग : इसका मुख्यतः उपयोग गृह निर्माण, फर्नीचर, टोकरी बनाने तथा हस्तशिल्प आदि में किया जाता है। आजकल इसका इस्तेमाल अगरबत्ती की डंडियों को बनाने के लिये भी होता है।

बैम्बूसा टुल्डा (*Bambusa tulda*)

स्थानीय नाम: *बैम्बूसा टुल्डा* को भी अलग जगहों पर भिन्न नामों से जाना जाता है। जैसे असम में जाती, वामुना, पश्चिम बंगाल में तुल्दा, जोवा उत्तर प्रदेश में, सिक्किम में किरानती, त्रिपुरा में म्रितिंगा, उत्तराखंड में पेका के नाम से प्रसिद्ध है।

पर्यावास तथा वितरण: यह बाँस मुख्यतः उत्तर पूर्वी भारत, सिक्किम, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल आदि में पाया जाता है। यह लगभग 500 से लेकर 1000 मी. तक कि ऊँचाई वाले भागों में होता है।

कल्म, पुष्पण व्यवहार एवं चक्र: यह बाँस लगभग 20–25 मी. तक लम्बा, गहरा हरा तथा सीधा व चिकना होता है। इसका पुष्पण छिटपुट तथा समूह में होता है, बीज बनता है। 2010 के बाद से इसका उत्तरी पूर्वी भारत में पुष्पण हुआ है।

उपयोग: इसका मुख्यतः उपयोग गृह निर्माण, टोकरी बनाने तथा हस्तशिल्प आदि में किया जाता है। आजकल इसका इस्तेमाल फर्नीचर तथा अगरबत्ती की डंडियों को बनाने के लिये भी होता है।

बैम्बूसा पैल्लिडा (*Bambusa pallida*)

स्थानीय नाम: असम, अरुणाचल प्रदेश में बिजली, बिजली जोवा, नागालैंड में तेसेरो, मेघालय में सेस्किएन स्खेन इनेंग वाती, केरल में मकर, सिक्किम में पउशि पउशिदिंग, यींग तथा बिहार में देवबांस के नाम से जाना जाता है।

पर्यावास तथा वितरण: बिहार, झारखण्ड, केरल, उत्तर पूर्व, उड़ीसा, सिक्किम, पश्चिम बंगाल आदि राज्यों में पाया जाता है।

कल्म: यह बाँस 15 मी. तक लम्बा, मोटी भित्ति, मजबूत, चिकना तथा स्लेटी हरा होता है।

पुष्पण व्यवहार एवं चक्र: समूह में तथा कभी–कभी छिटपुट होता है। पुष्पण चक्र 30 से 60 वर्ष होता है।

उपयोग: इसका उपयोग मुख्यतः टोकरी बनाने तथा बुनाई में किया जाता है। आजकल इसका इस्तेमाल फर्नीचर, खिलौना, चटाई को बनाने के लिये भी होता है।

बैम्बूसा पॉलिमोर्फा (*Bambusa polymorpha*)

स्थानीय नाम: बंगाल में जैबोरुआ, बसिनी बाँस, बकल, मणिपुर में लाम, समेबी, मिजोरम में वायरुआ, उड़ीसा में सुन्दरोगाइ, सुंदरकनिया बाँस, मध्य प्रदेश में नारंगी बाँस तथा असम में जमना बेटवा, केतुना के नाम से प्रसिद्ध है।

पर्यावास तथा वितरण: अरुणाचल प्रदेश, असम, बिहार, मध्यप्रदेश, मणिपुर, मिजोरम, उड़ीसा, त्रिपुरा, पश्चिम बंगाल में मुख्यतः पाया जाता है।

कल्म, पुष्पण व्यवहार एवं चक्र: 20–25 मी. तक लम्बा, चमकदार हरा या पीलापन लिया हुआ, हरी व पीली पट्टीधारी तथा चिकना होता है। छिटपुट एवं विरल, बीज नहीं बनता। पुष्पण समूह में तथा कभी–कभी छिटपुट होता है तथा पुष्पण चक्र 35–60 वर्ष होता है।

उपयोग : इसका उपयोग पेपर, सजावटी वस्तुएँ तथा हस्तशिल्प में किया जाता है। आजकल इसका इस्तेमाल गृह निर्माण, फर्नीचर तथा अगरबत्ती की डंडियों को बनाने के लिये होता है।

डैण्ड्रोकैलेमस जाइजैन्टियस (*Dendrocalamus giganteus*)

स्थानीय नामः अरुणाचल प्रदेश में माइपो, असम में वोरा तथा केतुना, सिक्किम में भालो बाँस, मणिपुर में मरिबोब के नाम से प्रसिद्ध है।

पर्यावास तथा वितरणः यह बाँस मुख्यतः कर्नाटक, बिहार, उत्तर पूर्वी राज्यों उत्तराखंड तथा पश्चिम बंगाल में पाया जाता है।

कल्म, पुष्पण व्यवहार एवं चक्रः यह बाँस लगभग 30 मी. तक लम्बा तथा मध्यम हरा होता है। यह विश्व का सबसे विशाल बाँस माना जाता है तथा समस्त बाँस प्रजातियों में सबसे अधिक व्यास का होता है। इसका पुष्पण छिटपुट होता है तथा पुष्पण चक्र 40 से 60 वर्ष है।

उपयोगः इसका उपयोग मुख्यतः निर्माण कार्यों तथा चटाईयाँ बनाने में किया जाता है।

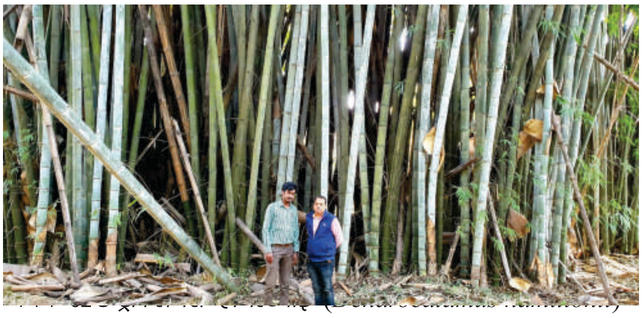

डैण्ड्रोकैलेमस हैमिल्टनाई (*Dendrocalamus hamiltonii*)

स्थानीय नामः असम में काको बाँस, त्रिपुरा तथा पश्चिम बंगाल में पीछा तथा ताम, मणिपुर में यूनिप, मेघालय में वनोके, सिक्किम में पाओ, मिजोरम में फुलुरवा, हिमाचल में मग्गर के नाम से प्रसिद्ध है।

पर्यावास तथा वितरणः यह बाँस मुख्यतः बिहार, हिमाचल प्रदेश, उत्तर पूर्व, उड़ीसा, सिक्किम, उत्तराखंड, पश्चिम बंगाल आदि राज्यों में पाया जाता है।

कल्म, पुष्पण व्यवहार एवं चक्रः यह बाँस लगभग 30 मी. तक लम्बा तथा मध्यम हरा होता है। समूह में अथवा छिटपुट होता है। पुष्पण चक्र 40–45 वर्ष होता है।

उपयोगः इसकी कोपलें खाने योग्य होती हैं तथा बाँस निर्माण कार्यों में उपयोग होता है।

डैण्ड्रोकैलेमस स्ट्रिक्टस् (*Dendrocalamus strictus*)

स्थानीय नाम : उत्तर एवं मध्य भारत में लाठी बाँस, आंध्र प्रदेश में कानका, कारा, संदापा विदेरू, बंगाल में कराल, गुजरात में नकुर बाँस किरी विदिरू, केरल में कालन मुला कुराथीमूला कोरना, महाराष्ट्र में नार्वेल, उड़ीसा में सालिया तथा तमिलनाडू में कलमुन्जिल के नाम से जाना जाता है।

पर्यावास तथा वितरण : आमतौर पर यह बाँस पूरे देश में पाया जाता है उत्तर पूर्व में इसको हाल के वर्षों में ही लगाया गया है साधारणतया यह प्रजाति 1000 मीटर तक की ऊँचाई तथा सूखे स्थानों पर पायी जाती है।

कल्म, पुष्पण व्यवहार एवं चक्र : इस बाँस कि लम्बाई लगभग 10–15 मी. तक होती है। समूहशील पुष्पण चक्र 25 से 45 वर्ष का है।

उपयोगः इसका उपयोग मुख्यतः फर्नीचर तथा अन्य निर्माण कार्यों, टोकरी बनाने तथा चटाईयाँ बनाने में किया जाता है।

मेलोकाना बेक्सीफेरा (*Melocana bacc ifera*)

स्थानीय नामः मिजोरम में मउटक, असम में तराई, आरतें, बंगाल, त्रिपुरा में मुली, मेघालय में वातराइ, मणिपुर में माउती तथा नागालैंड में तुरिया के नाम से जाना जाता है।

पर्यावास तथा वितरणः यह बाँस मुख्यतः असम, मणिपुर, मिजोरम, मेघालय, नागालैंड, त्रिपुरा में पाया जाता है। मिजोरम में यह समस्त बाँस के क्षेत्रों के आधे क्षेत्रफल में होता है।

कल्म, पुष्पण व्यवहार एवं चक्रः इस बाँस की कलम 15 से 20 मी. सीधी व लम्बी होती है परन्तु पतली भित्ति वाली होती है। यह भारत के चुनिंदा एकल रूप से उगने वाला बाँस है। विपुल मात्रा में, समूह में, कभी–कभी छिटपुट होता है। इसका पुष्पण चक्र 40 – 45 वर्ष का होता है।

उपयोगः इसका उपयोग मुख्यतः टोकरी बनाने तथा हस्तशिल्प में किया जाता हैं।

डैण्ड्रोकैलेमस स्टोक्साई (*Dendrocalamus stocksii*)

स्थानीय नाम: कर्नाटक में कोंडा, ऊर– क्षेमा केरल में उई, मूला, महराष्ट्र में चिवेरी, मेस कहा जाता है।

पर्यावास तथा वितरण: यह बाँस मुख्यतः गोवा, कर्नाटक, केरल तथा महाराष्ट्र में पाया जाता है।

कल्म, पुष्पण व्यवहार एवं चक्र: इस बाँस की कल्म 10–15 मी. लम्बी व सीधी तथा हरी होती है। छिटपुट होता है, इसका बीज नहीं बनता पुष्पण चक्र 40 से 45 वर्ष का होता है।

उपयोग: निर्माण कार्यों, फर्नीचर बनाने तथा सीढ़ी बनाने में इसका उपयोग किया जाता है।

डैनड्रोकैलेमस एस्पर (*Dendrocalamus asper*)

स्थानीय नाम: एस्पर

पर्यावास तथा वितरण: इस बाँस को सन 1990 के प्रारंभ में थाईलैंड से लाया गया था तथा बागान फसल के रूप में इसे भारत के विभिन्न स्थानों पर लगाया गया था (ठाकुर एवं अन्य, 2016 ब)।

कल्म, पुष्पण व्यवहार एवं चक्र: इस बाँस की क्लम 20 से 30 मी. लम्बी व मोटी परत वाली होती है। इसका पुष्पण समूह में होता है पुष्पण चक्र 100 वर्ष का होता है।

उपयोग: इसकी कोपलें खाने के उपयोग में लायी जाती हैं साथ ही यह बाँस निर्माण कार्यों तथा हस्तशिल्प के लिए उपयोगी होता है।

जाइजैंटोक्लोआ एट्रोवायोलेसिया (*Gigantochloa atroviolacea*)

स्थानीय नाम: काला बाँस

पर्यावास तथा वितरण: जावा में प्राकृतिक रूप से पाया जाता है।

कल्म: खुला क्लंप, कल्म गहरी बैंगनी अथवा काले रंग की, 15–20 मीटर लम्बी व 6 से 8 से.मी. व्यास लिए हुए।

ये सभी बाँस राष्ट्रीय बाँस योजना में शामिल हैं और पहले से ही उपयोगी परिभाषित किए गए हैं। उनमें से कुछ की ग्रामीण आबादी की आजीविका के लिये लाभ कमाने के उद्देश्य के साथ खेती की जा रही है।

संदर्भ:

अजय ठाकुर, शाम्भावी यादव एंड जे. एम. एस. चौहान (2016. (अ) एडिबल स्वीट बम्बू (*डैण्ड्रोकैलेमस एस्पर*): प्रोपेगेशन एंड प्रोडक्शन. *इंडियन हॉर्टिकल्चर,* 61 (3): 6–8.

अजय ठाकुर, संतन बर्थ्वाल एंड एच. एस. गिनवाल (2016) (ब) जेनेटिक डाइवर्सिटी इन बम्बूस: कन्सेर्वेटिव एंड इम्प्रूवमेंट फॉर प्रोडक्टिविटी. भारत में बाँस.131–146. *ईएनवीआईएस फॉरेस्ट्री बुलेटिन*। एफआरआई, देहरादून ।

वाई. सी. त्रिपाठी, अजय ठाकुर, टी. सी. भुयाँन (2008) बम्बू मैनेजमेंट फॉर प्रोडक्टिविटी एनहांसमेंट। *इंडियन फॉरेस्टर,* 136(9):1136–46

डॉ. अजय ठाकुर
वैज्ञानिक–एफ

कवकभक्षी कोकसीनेल्लिड बीटिलस् का अद्भुत संसार तथा वानिकी के क्षेत्र में उनकी उपयोगिता

श्री अखिलेश कुमार मिश्रा, शोध छात्र तथा डॉ. मौ. यूसुफ, वैज्ञानिक–जी
वन कीट विज्ञान शाखा, वन संरक्षण प्रभाग, वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून–248006

कोकसीनेल्लिड बीटिलस्, कीट जगत में विशिष्ट स्थान रखते हैं। कीट विज्ञान के वैज्ञानिकों, शोधकर्ताओं तथा जैविक नियन्त्रण से जुड़े लोगों ने कवकभक्षी कीटों की खोज में एक सौ पचास वर्षो से योगदान दिया हैं। भारत ही नहीं अपितु विश्व में कोकसीनेल्लिड बीटिलस् की खोज निरन्तर जारी है।

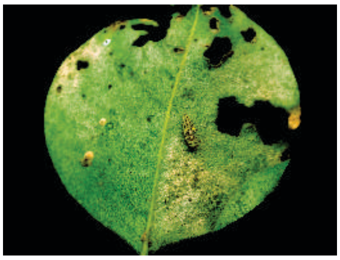

कवकभक्षी बीटिलस् ***साइलोबोरा बिसआक्टोनोटेटा*** **का लार्वा शीशम की पत्ती पर पाउडरी मिल्ड्यू का भक्षण करते हुए।**

कोकसीनेल्लिड बीटिलस् को गण *कोलियोप्टेरा* तथा कुल कोकसीनेल्लिडी में रखा गया है। इस समूह के कीटों की विविधता विश्वव्यापक है। विश्वभर में 6,000 से अधिक प्रजातियों का वर्णन किया जा चुका हैं (मिश्रा एण्ड यूसुफ, 2019)।

भारतवर्ष में भी कोकसीनेल्लिड बीटिलस् की लगभग 550 प्रजातियों का वर्णन कीट वैज्ञानिकों तथा शोधकर्ताओं ने किया है (पूर्णी, 2002)।

कोकसीनेल्लिड बीटिलस् अपने जीवन निर्वाह के लिए भोजन के रूप में नाशि कीटों जैसे–माहू (एफिड्स) तथा सूक्ष्म कीटों को खाते हैं। इस समूह के सभी सदस्य परभक्षी होते हैं। इसके अतिरिक्त लार्वे तथा वयस्क शल्की कीट (स्केलकीट), मिलीबग, थ्रिप्स, सफेद मक्खियों एवं अन्य कीटों को भी बड़े चाव से खाते हैं। नाशि कीटों की परभक्षी प्रवृत्ति होने के कारण ही जैविक नियन्त्रक के रूप में ये ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। इस कुल के अन्य सदस्य पत्तीभक्षक तथा कवकभक्षी भी होते हैं। पत्तीभक्षक बीटिलस के लार्वे तथा वयस्क मुलायम पत्तियों का भक्षण करते हैं। कवकभक्षी कोकसीनेल्लिड बीटिलस् के लार्वे तथा वयस्क कवकों को खाकर अपना जीवन निर्वाह करते हैं।

कवकभक्षी बीटिलस्

कवकभक्षी बीटिलस् को वर्ग–*इन्सेकटा*, गण–*कोलियोप्टेरा* तथा कुल–कोकसीनेल्लिडी में वर्गीकृत किया गया है। *हैलिजनी* समूह की प्रजातियाँ, मुख्य रूप से कवकभक्षी होती हैं तथा अपना सम्पूर्ण जीवन कवकों को खाकर व्यतीत करती हैं। इस समूह की सभी प्रजातियाँ केवल कवकों को ही खाती हैं। कवकभक्षी बीटिलस्, पाउडरी मिल्ड्यू (खर्रा/दहिया) को भोजन के रूप में ग्रहण करती हैं (लियु, 1951)। ये बीटिलस् कवकों पर आश्रित होने के कारण कोकसीनेल्लिडी कुल की अन्य प्रजातियों से पूर्णतः भिन्न होते हैं। कवकभक्षी समूह की प्रजातियाँ विश्वभर में अपने अनूठे एवं अद्भुत भोजन प्रवृत्ति के कारण अद्भुत तथा विलक्षण स्वभाव की मानी जाती हैं। कवकभक्षी बीटिलस् मुख्यतः पाउडरी मिल्ड्यू का भक्षण करती हैं। ऐरीसीफेल्स गण की कवक प्रजातियाँ पूरे विश्व में लगभग 10,000 आवृतबीजी पेड़ों को ग्रसित करती हैं तथा व्यापक रूप से पाउडरी मिल्ड्यू के प्रकोप को उत्पन्न करती हैं।

पिछले 150 वर्षों से विभिन्न वैज्ञानिकों एवं शोधकर्ताओं ने कवकभक्षी लेडी बीटिलस् तथा पाउडरी मिल्ड्यू के सम्बन्धों पर आधारित शोध कार्य किये हैं। विश्वभर में हैलिजनी समूह की प्रजातियों में कवक भक्षण की प्रकृति होने के कारण इन्हें जैविक नियन्त्रक के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। कवकभक्षी तथा पाउडरी मिल्ड्यू के सम्बन्धों के अध्ययन से यह पता चला है कि जहाँ पर पाउडरी मिल्ड्यू का अत्यधिक प्रकोप होता है वहाँ पर कवकभक्षी की संख्या भी अधिक पायी जाती है।

कवकभक्षी लेडी बीटिलस् में कवक भक्षण की उत्पत्ति :

जातिवृत्तीय आधारित शोधों द्वारा यह पता चला है कि इस समूह के सदस्य प्रारम्भिक अवस्थाओं में मिलीबग का भक्षण करते थे (जियोर्जी एवं अन्य, 2009)। कुछ अन्य शोधों से यह भी ज्ञात हुआ है कि इस वर्ग के बीटिलस् स्टर्नोरिकन को भोजन के रूप में ग्रहण करते थे। स्टर्नोरिकन के सदस्य शहद की बूँदों जैसे लसलसे पदार्थ का स्राव करते हैं। इसमें कार्बोहाइड्रेट तथा प्रोटीन्स की प्रचुर मात्रा होती है। यह पदार्थ पेड़–पौधों के विभिन्न भागों पर एकत्रित हो जाता है तथा इस स्राव से पेड़–पौधों के अन्य रासायनिक पदार्थों के साथ मिश्रित होने पर विशिष्ट प्रकार का पदार्थ निर्मित हो जाता है। इस पदार्थ को हेमीप्टेरा गण के सदस्य बड़े चाव से खाते हैं तथा कवकों के संवर्धन में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं। कवकों के विशेष समूह *एस्कोमाइसीटीज* जो कि प्रायः सूटी माउल्ड के नाम से जाने जाते हैं। इस समूह के कवकों के वृद्धि एवं विकास में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। लेसयेन, (2000) ने अपने शोधों द्वारा एक

परिकल्पना की अवधारणा से बताया कि प्रारम्भिक अवस्था में कवकभक्षी बीटिलस भोजन के रूप में सूटी माउल्ड का उपयोग करते थे।

पाउडरी मिल्ड्यू से ग्रसित शीशम की पत्तियाँ तथा कवक भक्षी बीटिलस् का लार्वा पाउडरी मिल्ड्यू का भक्षण करते हुए।

विभिन्न शोधों द्वारा यह भी विदित हो चुका है कि सूटी माउल्ड का संवर्धन, वृद्धि एवं विकास अप्रत्यक्ष रूप से विभिन्न कीटों द्वारा होता है। इस परिकल्पना की पुष्टि इस बात से भी होती है कि वर्तमान परिदृश्य में हेमीप्टेरा गण के सदस्य तथा लेडी बीटिलस् की अन्य प्रजातियाँ भी सूटी माउल्ड तथा शहद की बूँदों जैसे पदार्थ को भोजन के रूप में ग्रहण करते हैं।

पाउडरी मिल्ड्यू का जैविक नियन्त्रण :

विश्वभर में पाउडरी मिल्ड्यू का विभिन्न कृषि फसलों, सजावटी फूलों, बगीचों, कृषि–वानिकी, पेड़–पौधों की नर्सरी तथा वानिकी के अनेक पेड़ों पर व्यापक प्रकोप होता है। जिससे विभिन्न प्रकार के कवकजनित रोगों का प्रसार होता है तथा पेड़–पौधों की वृद्धि एवं विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। पाउडरी मिल्ड्यू के प्रकोप के प्रबन्धन एवं नियन्त्रण के लिए विभिन्न प्रकार के रासायनिक कवकनाशी पदार्थों का प्रयोग व्यापक स्तर पर किया जाता है। कवकनाशी रासायनिक पदार्थों का घोल बनाकर पेड़–पौधों के विभिन्न भागों पर छिड़काव किया जाता है। परन्तु यह विधि काफी खर्च वाली होती है तथा स्वास्थ्य की दृष्टि से भी प्रतिकूल है। अत्यधिक रासायनिक कवकनाशी पदार्थों के प्रयोग के कारण कवकों में कवकनाशी पदार्थों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता भी विकसित हो जाती है। तदुपरान्त कुछ समय पश्चात् रासायनिक कवकनाशी पदार्थों का प्रभाव धीरे–धीरे क्षीर्ण होने लगता है। परिणाम स्वरूप अत्यधिक धन हानि तथा श्रम हानि देखने को मिलती है।

कोकसीनेल्लिड बीटिलस्(*साइलोबोरा बिसआक्टोनोटेटा*) शीशम की पत्ती पर पाउडरी मिल्ड्यू का भक्षण करते हुए।

उपरोक्त सभी तथ्यों को ध्यान में रखते हुए जैविक नियन्त्रण विकल्प का प्रयोग कर कवकनाशी से होने वाली समस्याओं का निराकरण किया जा सकता है।

कोकसीनेल्लिड बिटिलस् के विशेष समूह हैलिजनी की विभिन्न प्रजातियाँ पाउडरी मिल्ड्यू पर भक्षण करती हैं। इस समूह की विभिन्न प्रजातियाँ विश्व के अनेक देशों में व्यापक रूप में पायी जाती हैं। विभिन्न वैज्ञानिक शोधों द्वारा नियमित क्षेत्र तथा दूरस्थ क्षेत्रों में अवलोकन द्वारा ज्ञात हुआ है कि कवकभक्षी की प्रजाति, *साइलोबोरा वाइजिंक्टिओक्टोमैकुलेटा* कम घनत्व वाले पाउडरी मिल्ड्यू पर भी भक्षण करते हैं (सदरलैण्ड एण्ड पारेला, 2006)। अन्य शोधों में यह भी ज्ञात हुआ है कि हैलिजनी समूह के सदस्य अपने संवेदी अंगों से पाउडरी मिल्ड्यू द्वारा उत्पन्न विशिष्ट संकेत को पहचानने में सक्षम हैं। *साइलोबोरा* वंश की विभिन्न प्रजातियों के लार्वे तथा वयस्क समूह में एकत्रित होकर पाउडरी मिल्ड्यू का भक्षण करते हुए देखे जा सकते हैं (धारपुर एवं अन्य, 1990)।

कवकभक्षी (*आइलिस इण्डिका*) करंज की पत्तियों पर पाउडरी मिल्ड्यू का भक्षण करते हुए।

पाउडरी मिल्ड्यू के प्रकोप तथा संक्रमण के नियन्त्रण के लिए कवकभक्षी हैलिजनी समूह की प्रजातियों द्वारा समय–समय पर अनेक शोध किये गये हैं। लियु (1951) ने अपने शोध कार्य द्वारा पाउडरी मिल्ड्यू की प्रजाति, *पोडोस्फेरा ल्यूकोट्राइका* तथा उसके कवकभक्षी *हैलिजिया हाउसेरी* बीटिल के जीवन–चक्र की अवस्थाओं, भोजन ग्रहण काल तथा दैनिक भोजन गतिविधियों पर सूचनाओं का संकलन किया था। *साइलोबोरा विसआक्टोनोटेटा* के लार्वे तथा वयस्क भोजन के रूप में कवकों के *माइसीलिया* के साथ–साथ *कोनीडिया* तथा *कोनिडियोस्पोर* को भी खाते हैं। यह पत्तियों की ऊपरी सतह पर पाउडरी मिल्ड्यू का भक्षण करते हैं। भारतवर्ष में पाउडरी मिल्ड्यू के नियन्त्रण के लिए कवकभक्षी बीटिलस जैसे–*आइलिस सिंक्टा* तथा *आइलिस इण्डिका, आइलिस बिस्टीगमोसा* पर शोध कार्य किये गये हैं।

शहतूत के पौधों पर *फाइलेक्टीना कोरोइलिया* को पूर्ण रूप से संक्रमित करके कवकभक्षी प्रजातियों को छोड़ा गया तदुपरान्त विभिन्न प्रेक्षणों को संकलित कर संक्रमण प्रतिशत, रोग नियन्त्रण प्रतिशत तथा रोग प्रतिशत सूची का निर्धारण किया गया (कृष्णकुमार तथा महेश्वरी, 2004)। मध्यप्रदेश में राम तिल या

काला तिल (*गुइजोटिका एबीसीनिका*) की पत्तियों पर *पोडोस्फेरा* वंश की पाउडरी मिल्ड्यू पर कवकभक्षी *आइलिस सिंक्टा* के लार्वे तथा वयस्कों द्वारा भक्षण करते हुए देखा गया है (धारपुर एवं अन्य, 1990)। *लिलियम यूसीटेटीसियम* पर *आइडियम* वंश की प्रजाति के पाउडरी मिल्ड्यू को आइलिस सिंक्टा के लार्वे एवं वयस्कों द्वारा भक्षण करते हुए देखा गया है (प्रसाद एवं राय, 1988)। भारत में कवकभक्षी लेडी बर्ड बीटिलस की प्रमुख प्रजातियाँ जैसे–*आइलिस सिंक्टा आइलिस कन्फ्यूजा, आइलिस बिस्टिगमोसा साइलोबोरा बिसआक्टोनोटेटा* आदि पायी जाती हैं। दक्षिण भारत में *आइलिस सिंक्टा* प्रमुख रूप से मिलती है।

दक्षिण भारत में कवकभक्षी की दो प्रजातियों को प्रमुख रूप में पाउडरी मिल्ड्यू पर भक्षण करते हुए देखा गया है। *आइलिस बिस्टिग्मोसा* तथा *आइलिस सिंक्टा शहतूत* की पत्तियों पर *फाइलेक्टीना कोराइलिया* नामक पाउडरी मिल्ड्यू कवक का भक्षण करती हैं। शोधों द्वारा यह भी पता चला है कि नीम तेल के पानी में बने घोल के छिड़काव तथा कवकनाशी रासायनिक पदार्थों से भी ज्यादा कवक नियन्त्रण में प्रभावी, कवकनाशी लेडी बीटिलस् की प्रजातियाँ हैं (कृष्णकुमार एवं माहेश्वरी, 2004)। वर्तमान में भारत के उत्तरी भाग के राज्यों जैसे–पंजाब, हरियाणा तथा उत्तराखण्ड में कवकभक्षी बीटिलस की तीन प्रमुख प्रजातियाँ पायी गयी हैं। हरियाणा तथा पंजाब में *साइलोबोरा बिसआक्टोनोटेटा* के लार्वे तथा वयस्क, शीशम की पत्तियों पर पाउडरी मिल्ड्यू द्वारा ग्रसित भागों पर भक्षण करते हुए देखे गये हैं। उत्तराखण्ड राज्य में तीन प्रमुख कवकनाशी प्रजातियाँ पायी जाती हैं। जो वानिकी के विभिन्न पेड़ों पर पाउडरी मिल्ड्यू का भक्षण करती हैं तथा प्राकृतिक रूप से जैविक नियन्त्रण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इनमें से तीन प्रजातियों के नाम *आइलिस इण्डिका*, आइलिस कन्फ्यूजा तथा *साइलोबोरा बिसआक्टोनोटेटा* प्रमुख रूप से शीशम, पापलर, बांज, खर्सू ओक, मोरू ओक, करंज, रोहिनी, कचनार, बेड़ू, साल, शहतूत इत्यादि अनेक वृक्षों, झाडियों, फूलों, बगीचों में भोजन के लिए कवकों पर भक्षण करते हुए देखे जा सकते हैं। कभी–कभी भोजन के आभाव में कोकसीनेल्लिड बीटलस् भोजन के रूप में कवकभक्षी बीटलस् के लार्वों का भक्षण भी कर लेती हैं।

कवकभक्षी *साइलोबोरा बिसआक्टोनोटेटा* **के प्यूपा पर** *एनीगलीज कार्डोनी* **कोकसीनेल्लिड बीटिलस् का लार्वा भक्षण करते हुए।**

एकीकृत रोग प्रबन्धन में कवकभक्षी लेडीबर्ड बीटिलस् की उपयोगिता :–

व्यवसायिक स्तर पर कवकभक्षी बीटिलस् को ही नियोजित करने से प्रत्यक्ष लाभ नहीं मिल सकता है या मिलने की सम्भावना कम हो सकती है। अतः पाउडरी मिल्ड्यू को नियंत्रित करने के लिए कुछ कवकनाशी बीटिलस् तथा अन्य विधियों को सम्मिलित करके रोग के व्यापक प्रकोप को नियंत्रित किया जा सकता है तथा यह सिद्धान्त एकीकृत रोग प्रबन्धन के अर्न्तगत सम्मिलित होता है। यह भी नितान्त आवश्यक है कि कवकभक्षी बीटिलस् के साथ–साथ पाउडरी मिल्ड्यू के प्राकृतिक शत्रुओं का प्रबन्धन, बहुगुणन, संवर्धन एवं संरक्षण आदि पर भी बल देना चाहिए।

कवकभक्षी बीटिलस् पाउडरी मिल्ड्यू के नियन्त्रण में ही नहीं अपितु पाउडरी मिल्ड्यू के अलग–अलग क्षेत्रों में प्राप्त होने से वहाँ पर पाउडरी मिल्ड्यू के प्रकोप तथा प्रसारण की सूचक भी सिद्ध हुई हैं। इनसे विभिन्न क्षेत्रों में यह भी ज्ञात होता है कि उस स्थान पर कवकों की उपलब्धता तथा रोग संचारण की स्थिति क्या है।

कवकनाशी रासायनिक पदार्थों का कवकनाशी बीटिलस् पर प्रभावः–

कैलीफोर्निया में अंगूर की खेती में पाउडरी मिल्ड्यू का भयंकर प्रकोप होता है जिससे फसल की उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। जिससे व्यवसायिक स्तर पर खेती करने वाले कृषकों को काफी हानि पहुँचती है। पाउडरी मिल्ड्यू की रोकथाम के लिए सल्फरयुक्त कवकनाशी रसायनों का प्रयोग व्यापक रूप से किया जाता है। प्रायः यह देखा गया है कि सल्फर युक्त रसायनों के अन्धाधुन्ध प्रयोग से विभिन्न प्रकार के कीटों तथा आर्थोपोडा संघ के जीवों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है (मार्टिनसन एवं अन्य, 2001)।

स्ट्रोबाइल्यूटिन जोकि एक प्रबल प्राकृतिक प्रतिजैविक पदार्थ है तथा प्रमुख रूप से कवकनाशी के रूप में व्यापक स्तर पर प्रयोग किया जाता है। परन्तु इस रसायन के कृत्रिम व्युत्पन्नों को भी कवकनाशी की तरह व्यापक प्रयोग किया जा रहा है। जिससे कवकों की नहीं अपितु वातावरण में पाये जाने वाले विभिन्न जीव–जन्तुओं के जीवन का अस्तित्व भी खतरे में बना रहता है। लेडीबर्ड बीटिलस् की विभिन्न प्रजातियाँ भी इस रसायन द्वारा प्रभावित होती हैं। अनेक अन्वेषणों एवं शोधों द्वारा ज्ञात हुआ है कि इस रसायन का कवकनाशी बीटिलस् के लार्वे तथा वयस्कों के जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

कवकभक्षी बीटिलस् की विशेष शारारिक संरचना :–

कवकभक्षी लेडी बीटिलस में विशेष प्रकार की शारारिक संरचना कोक्सीनेल्लिडी कुल के अन्य सदस्यों से प्रायः भिन्न एवं विशिष्ट होती है। विशेषकर मुखांगों की बनावट में विशिष्टता पायी जाती है। जैसे आइलिस वंश की प्रजातियों में जंभिका (मैक्सीला) का आकार छतरीनुमा होता है। बाह्य भाग में छोटे–छोटे काँटे जैसी संरचना अग्र भाग पर फैली होती है। इसकी विशिष्ट आकृति होने के कारण कवकभक्षी बीटिलस् सुगमता से कवकों को पहचानकर, कवकों के बीजाणुओं तथा माइसीलिया को एकत्रित

करने तथा मुख तक भोजन को पहुँचाने में अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। उदाहरण–*आइलिस इण्डिका, आइलिस कन्फ्यूजा* इत्यादि। कवकभक्षी बीटिलस् के मुखांगों में अधोहनु (मैन्डीबल) भी विशिष्ट आकृति के होते हैं। प्रत्येक लार्वा तथा वयस्क बीटिल में एक जोड़ी अधोहनु उपस्थित होते हैं। अधोहनु का अग्रभाग आरीनुमा दन्तों की तरह होता है। जिनमें छोटे तथा बड़े दोनों प्रकार के 4–5 काँटेनुमा संरचना पायी जाती हैं। अधोहनु के बहुदन्त होने की विशिष्ट आकृति होने के कारण यह कवकों के विभिन्न भागों को काटने, चबाने तथा छोटे–छोटे भागों में विभाजित करने में बहुत उपयुक्त होते हैं। जिससे कवकभक्षी बीटिलस् पाउडरी मिल्ड्यू तथा अन्य कवकों को सुगमता से खा लेते हैं। कवक भक्षियों के लार्वे तथा वयस्क में एक जोड़ी श्रृंगिका होती हैं जो प्रायः ग्यारह खण्डों में विभाजित होती हैं। प्रत्येक खण्ड में छोटे–छोटे स्पर्श सूत्र भी आच्छादित रहते हैं। यह मुख्य रूप से संवेदी उपांग हैं। इनका प्रमुख कार्य भोजन की उपलब्धता, आकार, भोजन का प्रकार तथा वातावरणीय दशाओं की सूचनाओं का निर्धारण करना हैं। इसके अतिरिक्त मुखांगों में ऊपरी ओष्ठ (लेब्रम) तथा निचला ओष्ठ (लेबियम) भी भोजन ग्रहण करने में सहायता करते हैं। इसके अलावा कवकों के जाले की आकृति वाले भागों को पकड़ने तथा कुतरने में भी मदद करते हैं।

कवक भक्षी (*आइलिस इण्डिका*) की जंभिका   कवक भक्षी (*आइलिस इण्डिका*) की अधोहनु

कवकभक्षी बीटिलस् का शरीर मुख्य रूप से तीन भागों सिर, वक्ष तथा उदर में बँटा होता है। सिर प्रायः गोलाकार तथा छोटा होता है। सिर में एक जोड़ी नेत्र, श्रृंगिका, अधोहनु, जंभिका तथा ऊपरी एवं निचले ओष्ठ होते हैं। वक्ष विशिष्ट आकृति का होता है। वक्ष के ऊपर मजबूत आवरण होता है जिसको प्रोनोटम कहते हैं। कवकभक्षी शत्रुओं तथा वातावरणीय दशाओं के अनुकूलन के लिए अपने सिर को प्रोनोटम के अन्दर छिपा लेते हैं। उदर भाग सबसे बड़ा भाग होता है तथा इस पर एक जोड़ी अग्र पंख होते हैं जिन्हें एलिट्रा कहते हैं। कवकभक्षी बीटिलस् एक जगह से दूसरी जगह पर पहुँचने के लिए पिछले पंखों का उपयोग करते हैं। यह एलिट्रा के अन्दर छिपे रहते हैं तथा उड़ने के समय ही बाहर निकालते हैं। पिछले पंखों के उपयोग से ही कवकभक्षी विभिन्न पेड़–पौधों की पत्तियों, फूलों, टहनियों पर विचरण करती रहती हैं। *प्रोनोटम* तथा *एलिट्रा* (अग्र पंख) मजबूत कवच की तरह होते हैं। यह काइटिनयुक्त, चिकने एवं विभिन्न रंगों की धब्बों, धारियों, पटिट्यों आदि से मिलकर एक विशेष कलाकृति का सृजन करते हैं। इस विशिष्ट रंग एवं सरंचना के कारण ही कवकभक्षी अपने शत्रुओं को विचलित कर स्वयं की सुरक्षा कर लेती हैं। भोजन के लिए कवकभक्षी बीटिलस दिन भर दौड़ते रहते हैं। इनके शरीर में तीन जोड़ी मजबूत पैर होते हैं।

कवकभक्षी कोकसीनेल्लिड बीटिलस् का जीवन चक्र :–

सामान्यतः कवकभक्षी लेडी बर्ड बीटिलस् की संख्या में वृद्धि वातावरणीय दशाओं, भोजन तथा वास स्थान की उपलब्धता इत्यादि पर निर्भर करती है। भोजन की उपलब्धता तथा वातावरणीय दशाओं के अनुकूल होने पर कवकभक्षी बीटिलस् की संख्या में अचानक वृद्धि आ जाती है। भारतवर्ष में शीत ऋतु के बाद कवकभक्षी बीटिलस् को प्रायः पेड़–पौधों की पत्तियों, फूलों आदि भागों पर पाउडरी मिल्ड्यू का भक्षण करते हुए देखा जा सकता है। कवकभक्षी बीटिलस् का आकार भी कोकसीनेल्लिडी परिवार के सदस्यों की भाँति होता है। इनका शरीर गोलाकार तथा अण्डाकार होता है। मादा बीटिलस् पेड़–पौधों की पत्तियों, टहनियों तथा फूलों पर अण्डे देती है। प्रायः अण्डे समूहों में होते है। अण्डे परवलयाकार, सूक्ष्म, सफेद या हल्के पीले सुनहरे रंग के होते हैं।

कवक भक्षी लेडी बीटिलस् *आइलिस इण्डिका* का जीवन चक्र

अण्डों का एक सिरा पत्तियों की सतहों पर चिपका रहता हैं तथा दूसरा सिरा मुक्त होता है। कुछ समयान्तराल के बाद अण्डों से लार्वे निकल आते हैं। लार्वो का आकार, रंग, रूप आदि के आधार पर विभिन्न उपप्रवस्थाओं में विभाजित किया जा सकता हैं। जिन्हें प्रायः इन्स्टार कहते हैं। अण्डे से तुरन्त निकलने वाले लार्वो को प्रथम इनस्टार कहते हैं। लार्वे प्रायः एक से लेकर चार तक या कभी–कभी पाँचवे इनस्टार में परिवर्तित होते हैं। लार्वे भोजन के रूप में पाउडरी मिल्ड्यू तथा पत्तियों, फूलों एवं नवीन पल्लवों के ऊपर शहद की बूँदों की तरह चिपचिपे पदार्थ को भोजन के रूप में ग्रहण करते हैं। कुछ समय पश्चात् लार्वो का आकार बढ़ता जाता है तथा पूर्ण विकसित लार्वा भोजन ग्रहण करना बन्द कर देता हैं। पूर्ण विकसित लार्वा कुछ समय पश्चात् प्यूपा में परिवर्तित हो जाता है। प्यूपा में विभिन्न प्रकार की शारीरिक रासायनिक क्रियाओं आदि के फलस्वरूप कुछ दिनों में कायान्तरण के पश्चात् प्यूपा से वयस्क बीटिल निकल आता है। वयस्क कवकभक्षी बीटिल, भोजन के लिए पाउडरी मिल्ड्यू को अपना आहार बनाता है तथा

कवकभक्षी के रूप में जैविक नियंत्रण में अपनी सक्रिय भूमिका निभाता हैं।

कवकभक्षी बीटिलस् की उपयोगिता :–

भारत ही नहीं अपितु पूरे विश्व में कवकभक्षी बीटिलस् की अनेकों प्रजातियों की खोज हो चुकी है तथा अनेक प्रजातियों के बारे में शोध कार्य किये जा रहे हैं। विगत कुछ वर्षो में कवकभक्षी बीटिलस् तथा कवक की प्रजातियों के बीच सह सम्बन्धों पर अनेकों जानकारियाँ प्राप्त हुई हैं। इनसे इस विशिष्ट समूह के सदस्यों में जीवनवृत्तीय उद्‌भव, जीवन चक्र तथा व्यवहारिकी के बारे में पता लगता हैं। यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि कवकभक्षी बीटिलस् प्रकृति का वरदान हैं तथा पादप जगत में हानिकारक कवकों को भक्षण करने में सदैव तत्पर रहती हैं।

वर्तमान परिदृश्य में विभिन्न देशों में ही नहीं अपितु भारत में भी रासायनिक कीटनाशकों तथा उर्वरकों का अन्धाधुन्ध प्रयोग किया जा रहा है। जिससे विभिन्न प्रकार की बीमारियाँ, जलवायु परिवर्तन, बाढ़, सूखा आपदायें आदि अनेकों समस्याएँ विकराल रूप में सामने आ रही हैं। इससे मानव समाज के साथ–साथ विभिन्न प्रकार के जीव–जन्तुओं के स्वास्थ्य पर संकट मंडरा रहा है। जीव–जन्तुओं एवं पादप जगत की विभिन्न संकटग्रस्त प्रजातियों की स्थिति बहुत ही दयनीय होती जा रही है। अतः हानिकारक रासायनिक कीटनाशकों, कवकनाशकों, उर्वरकों के प्रयोग को नियन्त्रित करके वैकल्पिक स्रोतों को बढ़ावा देना चाहिए। जिससे भविष्य में होने वाले दुष्परिणामों को समय रहते नियन्त्रित किया जा सके। प्राकृतिक रूप से जैविक नियन्त्रण को बढ़ावा देना चाहिए। जैविक नियन्त्रण पूर्ण रूप से प्राकृतिक सिद्धान्तों पर आधारित होता है तथा वातावरणीय दशाओं के साथ सह–सम्बन्ध स्थापित करके विभिन्न प्रकार के हानिकारक कीटों तथा कवकों के नियन्त्रण करने में विशेष लाभकारी है। इस प्रकार सभी जीव–जन्तुओं का जीवन खुशहाल रहेगा तथा वसुधैव कुटुम्बकम की धारणा को परिलक्षित किया जा सकता है।

सन्दर्भ

1. जियोर्जी, जे० ए०, वेन्डेनवर्ग, एन० जे०, मैक्हयूज, जे० वी०, फारेस्टर, जे० ए०, स्लीपिंसकी, एस० ए०, मिलर, के० बी०, सेपीरो, आई० आर० एण्ड व्हाइटिंग (2009) द इवोल्यूशन आफ फूड प्रीफरेन्सेस इन कोकसीनेल्लिडी, *बायोलोजिकल कन्ट्रोल,* 51: 215–231.

2. लेसयेन, आर० ए० बी०(2000) बीटलस् फीडिंग ऑन बग्स (कोलियोप्टेरा, हेमीप्टेरा): रिपिटेड सिफ्ट्स फ्राम माइकोफैगस एनसेस्टर्स, *इनवर्टीबरेट टैक्सोनोमी,* 14:917–929.

3. सदरलैण्ड, ए० एम० एण्ड पारेला, एम० पी०(2006) *क्वांटीफिकेशन ऑफ पाउडरी मिल्डयू कन्जंप्सन बाई ए नेटिव कोक्सीनेल्लिडः इम्पलीकेशन फार बायोलोजिकल कन्ट्रोल,* इन होडल, एम० एस०, जोन्सन, एम० डब्लू० (इड्स०), *कैलीफोर्निया कान्फ्रेंस ऑन बॉयोलोजिकल कंट्रोल 5 (रिवरसाइड) प्रोसीडिंग्स,* 128–199 पी०पी०.

4. धारपुर, एस० आर०, राव, एम०के० एण्ड सागर, आर० बी० एस० (1990) न्यू रिकार्ड ऑफ ए माइकोफैगस बीटल, *थिया सिंक्टा* फेब० आन पाउडरी मिल्डयू ऑफ नाइगर, *जर्नल आफ ऑयल सीड्स रिसर्च,* 7 :124–125.

5. लियु, सी० एल०, (1951) स्टडीज आन द फीडिंग कैपेसिटी एण्ड लाइफ हिस्ट्री ऑफ ए माइकोफैगस कोकसीनेल्लिड, *हैलिजीया हाउसेरी* मेडर, इन *कूमिंग, एनल्स एन्टोमोलोजिकी सिनीकी,* 1 : 1–15.

6. कृष्णकुमार, आर० एण्ड महेश्वरी, पी० (2004) मैनेजमेन्ट आफ पाउडरी मिल्डयू इन मलबेरी यूजिंग काकसीनेल्लिड बीटिलस् *आइलिस सिंक्टा* (फैबरीसियस) *आइलिस बिस्ट्गिमोसा* (मुलसेन्ट),*जर्नल ऑफ एण्टोमोलोलिकल रिसर्च,* 28: 241–246.

7. प्रसाद, आर० एण्ड राय, एम० (1988) न्यू रिकार्ड ऑफ ए माइकोफैगस बीटल, *थिया सिंक्टा* फेब0 ऑन पाउडरी मिल्डयू ऑफ लिनसीड. *फार्म साइन्स जर्नल,* 3:89–90.

8. मार्टिनसन, टी०, विलियमस, एल० एण्ड इंग्लिस–लोएब, जी०(2001) कॉम्पेटिबिलिटी ऑफ कैमिकल ड़िजीज एण्ड इन्सेक्ट मैनेजमेन्ट प्रेक्टिसेस यूज्ड इन न्यूयार्क वाइनयार्ड विद बॉयोलोजिकल कन्ट्रोल बाई *एनागरस* स्पीशीज (हाइमेनोप्टेरा : माइमेरीडी), पैरासिटॉइड ऑफ *एरीथरेन्यूरा* लीफ हॉपरस० *बॉयोलोजिकल कन्ट्रोल,* 22:22–234.

9. मिश्रा, ए० के० एण्ड यूसुफ, एम०(2019) नोट्स ऑन कोकसीनेल्लिड बीटिल्स; (कोलियोप्टेराः कोकसीनेल्लिडी) फ्राम फोरेस्ट इकोसिस्टम ऑफ उत्तराखण्ड, *इण्डियन जर्नल ऑफ बॉयोलोजिकल कंट्रोल,* 33:(1) 1–6.

10. पूर्णी, जे०(2002) एन एनोटेटेड चेकलिस्ट ऑफ द कोकसीनेल्लिडी (कोलियोप्टेरा) एक्सक्लुडिंग एपीलेकनिनी आफ दा इण्डियन सब रीजन. *ओरिएन्टल इन्सेक्ट्स,* 36: (1) 307–383.

अखिलेश कुमार मिश्रा
शोध छात्र

पुष्प एवं स्थल सौन्दर्य के लिए बाँस का योगदान

डॉ. प्रियंका ठाकुर, प्रधान पुष्प कृषि विज्ञानी[1], डॉ. ए. के जोशी, सह निदेशक[2], डॉ. अनूप चंद्रा, वैज्ञानिक–एफ[3], डॉ. प्रवीण कुमार वर्मा, वैज्ञानिक–सी[4] एवं डॉ. ऋतू जैन, वरिष्ठ वैज्ञानिक[5]

[1,2,5]क्षेत्रीय बाग़वानी अनुसंधान और प्रशिक्षण केंद्र, धौलाकुआँ, जिला सिरमौर (हि.प्र.)

[3,4]वन वनस्पति प्रभाग, वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून, उत्तराखंड.

बाँस विश्व का सबसे तेज़ी से बढ़ने वाला पौधा है तथा यह सबसे लम्बी घास है। अपनी मजबूती के कारण यह बहुउपयोगी है। सदियों से मानव अपने जीवन काल में बाँस का उपयोग करता आ रहा है, जैसे बाँस के खिलौने, पतंग, अगरबत्ती की डंडियाँ, लाठी, फ़र्नीचर, चटाईया, टोकरियाँ, बर्तन और इसके नयी प्रोह से अचार भी बनता है। बाँस की तरह पुष्पों का भी मनुष्य जीवन में एक महत्वपूर्ण स्थान है। पुष्प प्रकृति की अनुपम देन है तथा हमारे जीवन का एक अभिन्न अंग है। यह सौन्दर्य के परिचायक और किसी को आदर–प्रदर्शित करने के काम भी आते हैं। फूलों का उपयोग मालाएँ, गजरा, गुलदस्ते, बुके, बटन होल्ज व अन्य पुष्प अलंकरण कार्यों के लिए किया जाता है। ताज़े कटे पुष्पों की व्यावसायिक बाज़ार में काफी मांग है, लेकिन यह थोड़े समय के लिए ही ताज़े रह पाते हैं।

आज के परिवेश में सूखे पुष्पों का चलन बढ़ गया है। सूखे पुष्प वह पुष्प हैं जो सूखने के बाद भी अपनी सुन्दरता बनाए रखते हैं और वर्ष भर हर मौसम में उपलब्ध रहते हैं। फूलों एवं पत्तियों को अख़बारों की तह में रखकर उनकी सुन्दरता संरक्षित की जा सकती है। यह बधाई कार्डों, आंतरिक सज्जा व अन्य पुष्प कृतियाँ बनाने में प्रयोग होते हैं। फूलों को सुखाने की प्रक्रिया को (निर्जलीकरण तकनीक) कहते हैं तथा फूलों को कई प्रकार से सुखाया जाता है, जैसे हवा में सुखाना, सूर्य की रोशनी में सुखाना, दाब या सन्निहित तकनीक द्वारा, उष्मक तथा माइक्रोवेव उष्मक में सुखाना आदि।

बाँस, पुष्प उत्पादन व भूनिर्माण के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। फूलों का नर्सरी उत्पादन, भूमिगत नर्सरी की क्यारियां व कम ऊँचाई वाले पॉलीघर बाँस से ही बनाए जाते हैं। कारनेशन, गुलदाऊदी, लिलियम, डहेलिया के कटे फूलों की फसल के लिए बाँस की डंडियों की आवश्यक होती है। गमलीय पुष्पीय पौधों की टहनियों/शाखाओं को सहारा देने के लिए बाँस की डंडियों का प्रयोग होता है। कुछ सुंदर बाँस जैसे बुद्दा बाँस, पीला बाँस, बागों में सुन्दरता बढ़ाने के लिए उगाये जाते है। बाँस के द्वारा विभिन्न क्षेत्रों के उद्यान डिजाइन को परिभाषित किया जा सकता है जैसे कि दीवारों, ड्राईव–वे आदि को बनाए रखना। पुष्पीय लताऐं जैसे गुलाब, पार्वती बेल, गोल्डन शावर आदि बाँस की लम्बी डंडियों व बुनी हुई संरचनाओं पर चढ़ाई जाती हैं। कुछ वस्तुओं व जानवर के आकार के बाँस फ्रेम का उपयोग बगीचों में टापयारी बनाने के लिए किया जाता है। बाँस से मजबूत, सुंदर बाड़ भी बनती है। बाँस की छड़ियों में कृत्रिम रोशनियां, पत्थरों का संयोजन तथा फव्वारे के रूप में भी इस्तेमाल होता है। घर की आंतरिक साज सज्जा के लिए बाँस की टोकरियाँ, हैंगर, विंड चाईम व अन्य बाँस के फ्रेम सूखे फूलों के साथ सुसज्जित किये जाते हैं।

बाँस रोजगार भी प्रदान करता है। सूखे फूल/पौंधे के हिस्से और उनके उत्पाद लम्बे समय तक चलने वाले होते हैं और मौसम के बावजूद अपनी सौन्दर्य विशेषताओं को बनाये रखते हैं। शुष्क फूलों का बाज़ार, हाल ही में पर्यावरण के प्रति सचेत रूप से तेजी से विकसित हुआ है और ताज़ा फूलों के लिए पर्यावरण के अनुकूल और बायोडिग्रेडेबल विकल्प के रूप में सूखे फूलों के लिए उपभोक्ताओं की पसंद हैं। अकेले शुष्क फूल और पुष्प शिल्प उद्योग का मूल्य भारतीय रुपये में सालाना 6000 करोड़ है। कृषि अवशिष्ट और सूखे पौंधों के हिस्से, जिन्हें सुधारने और अलंकृत करके सौंदर्यवादी कलात्मक उत्पादों में परिवर्तित किया जा सकता है।

निर्जलित फूलों को 'सूखे फूलों' के रूप में जाना जाता है, चाहे वह प्राकृतिक रूप से या कृत्रिम रूप से सूखे हों। इनका उपयोग कई उत्पादों को बनाने के लिए किया जाता है जैसे कि सूखे फूल की व्यवस्था, पॉट डालना, फूलों की ज्वेलरी, फूलों के उपहार, फूलों के ग्रीटिंग कार्ड, पुस्तक के निशान, दीवार के हैंगिंग, पेपर वेट, कंटेनर, टेबल मैट, इत्यादि। बिलि बटन, पंखों वाला चिरस्थायी, कागज़ के

फूल, पुआल का फूल, ग्लोब एमरनथ आदि। विभिन्न प्रकार की टोकरियाँ, बर्तन, कंटेनर, स्टैंड, बाँस से बने प्लांटर्स का उपयोग शुष्क पुष्प उद्योग में मूल्य वर्धित पुष्प शिल्प वस्तुओं को बनाने में किया जाता है। बाँस की टोकरियाँ, प्लांटर्स और कंटेनरों में रखे सूखे फूलों के ताज़े फूलों पर कई फायदे होते हैं क्यूंकि वह साल भर उपलब्ध होते हैं जो विभिन्न प्रकार के उत्पादों में गर्मी और ठंड के प्रति सहनशील होते हैं, अधिक टिकाऊ होते हैं, परिवहन के लिए आसान होते हैं और अंत में स्टोर करना आसान होता हैं तथा लम्बी अवधि तक सुन्दरता बरकरार रखते हैं।

चित्र–01: विभिन्न प्रकार के सजावटी सामग्री

डॉ. प्रियंका ठाकुर
प्रधान पुष्प कृषि विज्ञानी

डेकालेपिस हमिल्टोनि विघ्ट एवं अर्न: एक संकट ग्रस्त प्रमुख वनोत्पाद

डॉ. पंकज सिंह, वैज्ञानिक–सी, श्री प्रवीण एच. चव्हाण, वैज्ञानिक–जी, डॉ. जी आर एस रेड्डी, वैज्ञानिक–जी, श्री सागर एम., तकनीशियन और श्री राजेश्वर कोंडा, परियोजना सहायक
वनजैवविविधता संस्थान, हैदराबाद (तेलंगाना)

हमारे जंगलों में ऐसे कई उपयोगी वनोत्पाद प्रजातियाँ मौजूद हैं जिनका अस्तित्व अत्यधिक दोहन के कारण संकट ग्रस्त या विलुप्ति के कगार पर है। इनमें से कई प्रजातियाँ केवल स्थानिक होती हैं जो कि एक क्षेत्र विशेष में ही पाई जाती हैं। *डेकालेपिस हमिल्टोनि* एक ऐसी ही स्थानिक प्रजाति है जो भारत के केवल दक्षिण राज्यों (कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु, आंध्रप्रदेश एवं तेलंगाना) में पाई जाती है (राजू और रमना, 2011)। आंध्रप्रदेश के करनूल, चितूर, कड्डपा, नेल्लोर, अनंतपुर जिलों जबकि तेलंगाना के रंगारेड्डी और महबूबनगर जिलों में *डेकालेपिस हमिल्टोनि* पाई जाती है। *डेकालेपिस हमिल्टोनि* को तेलगु में मरेडु कोमलु या नन्नारी कोमलुया मरेडुगद्दलू और अँग्रेजी में इसे स्वेलों रूट कहा जाता है। *डेकालेपिस हमिल्टोनि* एक औषधीय लता है (चित्र.1) एवं इसकी जड़ एक प्रमुख औषधीय वनोत्पाद है जिसका संग्रहण उस क्षेत्र में रहने वाले लोगों के लिए जीविकोपार्जन का एक महत्वपूर्ण संसाधन है (वेदवथी, 2004)। यह मुख्यतः हिल क्षेत्रों और पत्थरों की दरारों में उगती है अतः कम क्षेत्र में उपलब्धता और इसकी जड़ों का अत्यधिक दोहन के कारण इसको आईयूसीएन की संकटग्रस्त श्रेणी में रखा गया है (आईयूसीएन, 2015)। इसकी खेती मुख्यतः इसके बीजों द्वारा की जाती है जिसका संग्रहण जनवरी से अप्रैल के मध्य इसके परिपक्व फल के फटने से पहले किया जाता है अन्यथा इसके बीज हवा में बिखर जाते हैं। इस क्रम में कुछ प्राप्त बीजों को वन जैव विविधता संस्थान की नर्सरी में भी बोया गया और उसके पौधे भी बनाए गये (चित्र.2)।

चित्र.1– *डेकालेपिस हमिल्टोनि* और उसके फल स्रोत. श्री सागर,

चित्र.2– संस्थान के परिसर में *डेकालेपिस हमिल्टोनि* **के पौधे, स्रोत. डॉ. जी आर एस रेड्डी एवं श्री पंकज सिंह**

डेकालेपिस हमिल्टोनि जड़ों का उपयोग आदिवासी और स्थानीय लोग पुरातन समय से करते आ रहे हैं। इसकी जड़ों का इस्तेमाल लेक्सेटिव, रक्त शोधक, हैल्थ टॉनिक, शीतल पेय के तौर पर एवं मधुमेह के इलाज में भी किया जाता है (आईसीएमआर, 2009)। यह औषधीय गुण इसमें मौजूद लाभकारी रसायन जैसे सेपोनिन, टेनिन, रेसिन, स्टेरोल, अइनोसिटोल, लुपीओल, फेरुलिक एसिड, बीटा एमयरिन इत्यादि की वजह से होता है (आईसीएमआर, 2009)। इतना ही नहीं, इसकी जड़ों में मौजूद सुगंध का मुख्य कारण 2.हाइड्रोक्सी. 4.मिथोक्सी बेंजल्डिहाइड है जिसकी वजह से जड़ों के सार का उपयोग उद्योग में वेनिलीन के स्थान पर भी किया जाता है (चित्र.3)। ऐसा इसलिए क्योंकि 2.हाइड्रोक्सी. 4.मिथोक्सी बेंजल्डिहाइड, वेनिलीन का एक आइसोमर है (प्रदीप और साथी, 2016)।

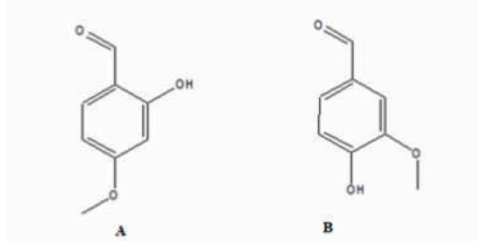

चित्र.3– *डेकालेपिस हमिल्टोनि* जड़ों में मौजूद **A.2.हाइड्रोक्सी. 4.मिथोक्सी बेंजल्डिहाइड और B-वेनिलीन**

औषधीय इस्तेमाल के अलावा, इसकी जड़ों का अचार भी बनाया जाता है साथ ही साथ इसकी सब्जी भी बनाकर

खाते हैं। इसकी जड़ों का संग्रहण परिपक्व पौधे से करते हैं सामान्यतः 2 या 3 साल के पौधे से उचित मात्रा (15–20 किग्रा) में जड़ें प्राप्त हो जाती हैं एवं सतत संग्रहण के हेतु इसकी मुख्य जड़ की कटाई नहीं करते है (राजू और रमना, 2011)। जड़ों की कटाई ज़्यादातर गर्म मौसम में करते हैं ऐसा इसलिए क्योंकि शर्बत या शीतल पेय बनाने के लिए जड़ों की आवश्यकता गर्मी में ज्यादा होती है। लेकिन अन्य मौसम में भी इसका संग्रहण किया जाता है जोकि आदिवासी एवं ग्रामीणों के जीविकोपार्जन का एक साधन है। एक किग्रा जड़ का दाम गर्म मौसम में लगभग रु. 100–150 होता है और अन्य मौसम में लगभग रु. 80–120 होता है (राजू और रमना, 2011)। संग्रहण के पश्चात जड़ों के छोटे छोटे टुकड़े करके इनको सूखाते हैं जिससे शीतल पेय के लिए सामग्री लंबे समय तक उपलब्ध रहे (चित्र.4)।

चित्र.4– जड़ों को सुखाने का स्थानीय तरीका स्रोतः श्री किशोर और जीसीसी द्वारा बनी नन्नारी शर्बत, स्रोतः श्री पंकज सिंह

इसकी जड़ों से बनी हैल्थ टॉनिक या ड्रिंक को स्थानीय भाषा में नन्नारी शर्बत कहा जाता है जो एक कूल ड्रिंक की तरह उपयोगी है। यह ड्रिंक पेट से जुड़ी समस्याओं जैसे जलन में राहत देता है और शरीर को गर्मी में ठंडा रखता है। गिरीजन कोपिरेटिव कोर्पोरेशन (जीसीसी), तेलंगाना और आंध्र प्रदेश इन जड़ों को वन संरक्षा समिति या वनवासी के माध्यम से खरीदता है। जीसीसी इन जड़ों का इस्तेमाल नन्नारी शर्बत बनाने में करते हैं (चित्र.4) जो शीतल पेय के रूप में प्रचलित है। जीसीसी द्वारा बनी नन्नारी शर्बत (सांद्रित) का दाम रु. 160.00 प्रति 750 एम.एल है और शर्बत बनाने के लिए एक कप नन्नारी (सांद्रित) को 4.5 कप ठंडे पानी में घोलकर इसका इस्तेमाल किया जाता है साथ ही इसमें नींबू को भी स्वाद बढ़ाने के लिए डाला जाता है। *डेकालेपिस हमिल्टोनि* एक महत्वपूर्ण वनोत्पाद एवं वर्तमान में सतत् संग्रहण के कारण जंगलों में यह एक संकटग्रस्त पौधा है। अपितु आदिवासी और स्थानीय लोगों के लिए यह एक जीविकोपार्जन का उत्तम साधन है अतः इसके संरक्षण और इसकी उत्पादकता को बढ़ाने पर शोध करने की आवश्यकता है जिससे इसकी जड़ों की उपलब्धता इन क्षेत्रों में निरंतर बनी रहे।

संदर्भः

राजू, ए.जे.एस., रमना, के.वी. 2011. ट्रेडीशनल प्रिपारेशन ऑफ हेल्थ ड्रिंक नान्नरी शर्बत फ्राम द रूट एक्सट्राक्त ऑफ *डेकालेपिस हमिल्टोनि* विघ्ट एवं अर्न. *इंडियन जर्नल आफ नैचुरल प्रोडक्ट एंड रिसौर्सेस,* 2:121–124.

वेदवथी, एस. 2004. *डेकालेपिस हमिल्टोनि* विघ्ट एवं अर्न.– एन एंडेंजेर्ड सोर्स ऑफ इंडिजिनस हेल्थ ड्रिंक. *नैचुरल प्रोडक्ट रेडीएन्स,*3: 22–23.

वेद, डी., साहा, डी.,रविकुमार, के., हरीदासन, के. 2015. *डेकालेपिस हमिल्टोनि.* दी *आईयूसीएनरेड लिस्ट ऑफ थ्रेटेंड स्पीसीजः* ई-T50126587A50131330

प्रदीप, एम., किरण, के., गिरिधर, पी. 2016. अ बायोटेक्नोलोजिकल पर्सपेक्टिव टूवर्ड इम्प्रूवमेंट ऑफ *डेकालेपिस हमिल्टोनिः* पोटेनशियल एपलिकेशन ऑफ इट्स टुबर एंड बायोएक्टिव कम्पाउण्ड ऑफ न्यूटरासूटिकल फॉर वैल्यू एडीशन. इनः *बायोटेक्नोलोजिकल स्ट्रेटीजी फार द कंसरवेशन आफ मेडिशिनल एंड ओरनामेंटल क्लाइंबर्स*–पार्ट–III-स्प्रिंगर इंटरनेशनल पब्लिशिंग, न्यूयार्क317–238.

आईसीएमआर, 2009. रिव्यू ऑन इंडियन मेडिसिनल प्लांट्स. मेडिसिनल प्लांट यूनिट, वॉल्यूम–9, पीपी 194–200. *इंडियन काउंसिल ऑफ मेडिकल रिसर्च,* न्यू दिल्ली.

डॉ. पंकज सिंह
वैज्ञानिक–सी

उत्तराखंड में रिंगाल बाँस की विविधता, वितरण, उपयोगिता एवं संरक्षण

डॉ. प्रवीण कुमार वर्मा[1], वैज्ञानिक–सी, श्री राजेंद्र कुमार मीणा[2], वैज्ञानिक–डी, डॉ. अनूप चंद्रा[3], वैज्ञानिक–एफ, रंजना नेगी[4], वैज्ञानिक–डी एवं डॉ. प्रियकां ठाकुर[5], प्रधान पुष्प कृषि विज्ञानी

[1,3,4] वन वनस्पति विज्ञान प्रभाग, वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

[2]आनुवंशिकी एवं वृक्ष सुधार प्रभाग, वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

[5]क्षेत्रीय बागवानी अनुसंधान और प्रशिक्षण केन्द्र, धौलाकुआँ, सिरमौर (हि.प्र.)

1. बाँसों का परिचयः

अगर बाँस के बारे में कहा जाए तो इसे अद्भुत पौधा कहना गलत नहीं होगा। इसकी अद्भुत विशेषताओं एवं मानव जीवन में इसकी उपयोगिता को देखते हुए ही इसे 'हरित सोना' या 'ग्रीन गोल्ड' भी कहते हैं। जन्म से लेकर मृत्यु तक बाँस जीवन के विभिन्न पहलुओं से जुड़ा है। इसे गरीबों का टिंबर भी कहा जाता है। वैज्ञानिक रूप से यह पृथ्वी पर सबसे तेज बढ़ने वाला पौधा है। इसकी कुछ प्रजातियाँ एक दिन में (24 घंटे) 121 सेंटीमीटर (47.6 इंच) तक बढ़ जाती हैं। यह पादप जगत के घास परिवार *पोएसी* से आते हैं। अगर इसके उपयोग पर बात की जाए तो इसके तकरीबन 1500 से अधिक लिखित उपयोग हैं। भारतीय वन सर्वेक्षण की नवीनतम प्रकाशित रिपोर्ट (2019) के आँकड़े के अनुसार भारत में वनों के निकट रहने वाले तकरीबन 20 लाख लोग बाँस पर आधारित विभिन्न व्यवसायों से जुड़े हुए हैं।

यूरोप एवं अंटार्कटिका को छोड़कर बाँस दुनिया के अधिकतर सभी महाद्वीपों में पाये जाते हैं। दुनिया में इसकी कुल 1482 प्रजातियाँ एवं 119 जातियाँ पायी जाती हैं जिसमें एशिया का स्थान प्रथम हैं। इसके बाद दक्षिणी अमेरिका का स्थान आता हैं। इसका प्राकृतिक वासस्थान उष्णकटिबंधीय, उपोष्णकटिबंधीय एवं समशीतोष्ण क्षेत्रों में 46 और 47 अक्षांश के बीच 4000 मीटर तक की ऊँचाई वाले क्षेत्रों में है। भारत में बाँस पारंपरिक जीवन का अभिन्न अंग हैं जिसमें संरचनाओं का निर्माण से लेकर घरेलू उपयोग की वस्तुएँ, फर्नीचर, कृषि का सामान, साज–सज्जा के सामान, संगीत वाद्य यंत्र, कागज निर्माण के लिए लुग्दी इत्यादि शामिल हैं। शर्मा एवं निर्मला, 2015 के प्रकाशित अनुसंधान के अनुसार भारत में इसकी 29 जातियाँ एवं 149 प्रजातियाँ पायी जाती हैं, जिनमें से 11 प्रजातियाँ ऐसी हैं जो दुनिया के दूसरे देशों से ला कर लगाई गईं हैं। भारत की कुल 45 प्रतिशत बाँस की विविधिता में तीन जातियों का बड़ा योगदान हैं, वह हैं–

बैम्बूसा, डेंड्रोकेलेमस एवं *ओकलैन्ड्रा*, इनमें से प्रत्येक की 10 से अधिक प्रजातियाँ हैं। भारत में बाँसों के उत्पादन का कुल आंकलन 278 टन है एवं बाँसों के अंतर्गत कुल उगने वाला क्षेत्र तकरीबन 16 मिलियन हैक्टेयर है।

2. उत्तराखंड के बाँसः

जैसा कि आप जानते हैं कि उत्तराखंड राज्य का कुछ भाग मैदानी तथा अधिकतर भाग पहाड़ी है, यहां की विषम जलवायु के कारण यहां पर उष्णकटिबंधीय, समशीतोष्ण एवं शीतोष्ण जलवायु में उगने वाले बाँस पाये जाते हैं मैदानी भागों में काँटा एवं लाठी बाँस पाये जाते हैं, जबकि पहाड़ी भागों में रिंगाल बाँस पाये जाते है।

3. रिंगाल बाँसः

रिंगाल, जिसे बौना बाँस (dwarf bamboo) के नाम से भी जाना जाता है और यह उत्तराखण्ड में पाया जाने वाला बहुउपयोगी बाँस है। रिंगाल की उत्तराखण्ड के पहाड़ी क्षेत्रों में कुछ उसी तरह की भूमिका है जैसे कि उत्तर पूर्व के राज्यों में बाँस की हुआ करती हैं। रिंगाल बाँस नीचे के स्थानों में पाये जाने वाले बाँसों की तरह लंबे और मोटे नहीं होते हैं। यह 10.12 फीट तक की ऊँचाई से ऊपर नहीं जाते हैं यह मुख्य रूप से उन स्थानों पर उगता हैं जहां उसके लिये पानी और नमी की उचित व्यवस्था हो। यह विशेषकर 1500 से 3500 मीटर की ऊँचाई पर उगता हैं। रिंगाल मुख्यतः उत्तराखंड के पहाड़ी क्षेत्रों में बसे गांवों को जीविका का एक साधन ही नहीं हैं बल्कि यह यहां के लोकजीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा भी हैं। रुद्रप्रयाग में रिंगाल बाँस कारीगरों को रुधिया नाम से जानते हैं। उत्तराखंड के ग्रामवासी रिंगाल के विभिन्न उत्पादों को विभिन्न आकार देते हैं बेहद लचीले इस रिंगाल से बनने वाली वस्तुएं टिकाऊ और

चित्रः रिंगाल बाँस प्रजातियाँ एवं उसकी कल्म– शीथः 1–2ः देव रिंगाल (*Himalayacalamus falconeri*), 3–4ः जमुरा रिंगाल (*Yushania anceps*), 5–6ः गोल रिंगाल (*Drepanostachyum falcatum*), 7–8ः थाम रिंगाल (*Thamnocalamus spathiflorus*).

गुणवत्तापरक मानी जाती हैं, जिनमें पारंपरिक रूप से प्रमुख हैं सामान लाने एवं रखने वाली टोकरी, पूजा के फूलों की टोकरी, रोटी रखने की छापरी, टोपी, कंडी, चटाई, अनाज साफ़ करने वाला सूप, स्ट्रें यहां तक कि घर की छत का निर्माण एवं आधुनिक जीवन की उपयोगी वस्तुएँ, पेन, फ़ाइल कवर, टूथब्रश, फोटोफ्रेम, कलमदान, लैंप सेड, चाय ट्रे, डस्टबिन इत्यादि। इसके अतरिक्त रिंगाल पहाड़ी लोगों के पशु पालन में चारा पत्ती के रूप में भी बड़े स्तर पर इस्तेमाल होता है एवं इसकी पत्तियाँ बहुत उपयोगी होती हैं। पहाड़ी खेतों में रिंगाल से बाड़ तैयार की जाती है और सूखने पर इसका उपयोग जलावन के लिये किया जाता है। यहां तक मिट्टी से बने घरों में छत बाँस और रिंगाल के बिना तैयार नहीं की जा सकती है। रिंगाल प्लास्टिक से काफी मजबूत एवं टिकाऊ होता है तथा प्लास्टिक से होने वाले साइड इफेक्ट्स भी रिंगाल से बनी वस्तुओं से नहीं होते। आजकल आधुनिक तकनीकियों द्वारा रिंगाल से भी ऐसे उत्पाद बनाए जा सकते हैं जो देखने में सुंदर और टिकाऊ भी होते हैं।

4. रिंगाल बाँसों की विविधता एवं उत्तराखंड में वितरणः उत्तराखण्ड में मुख्यतः 4 तरह की रिंगाल की प्रजातियाँ पायी जाती हैं जो अलग–अलग नामों से जानी जाती हैं और यह उत्तराखंड के तकरीबन 60,000 हेक्टेयर के जंगलों एवं अन्य भूमि पर अलग अलग ऊँचाई के क्षेत्रों में पाये जाते हैं। प्रमुख रूप से इनका वास स्थान विभिन्न प्रकार के बांज ओक के जंगल होते हैं। रिंगाल की इन प्रजातियों का विवरण निम्न हैंः

4.1. गोल रिंगाल (*Drepanostachyum falcatum*): इसे *Arundinaria falcata* भी कहते हैं इस रिंगाल की कुल ऊँचाई 2 मीटर तक होती हैं। यदा कदा इसकी ऊँचाई तकरीबन 5.0 से 6.0 मीटर तक भी पहुँच जाता है एवं इसकी मोटाई तकरीबन 1.8 सेंटीमिटर तक होती हैं। यह प्रजाति बहुत घने झुंडों में उगती हैं कभी कभी झुंड में इनकी संख्या 100 से भी अधिक हो जाती हैं। यह 1500–2200 मी. तक की ऊँचाई तक पाया जाता हैं एवं इसका उत्तराखंड में फैलाव बहुत व्यापक हैं। मुख्यतः यह उत्तराखंड के बागेश्वर (सामा), पिथौरागढ़ (मुंसियारी एवं मिलम रोड, धारचूला), अल्मोड़ा (बिनसर वन्य जीव बिहार), चमोली (मंडल, गोपेश्वर, ग्वालदम, थराली), देहरादून (टोंस, मोरच, मसूरी, चकराता), उत्तरकाशी (हरि की दून, गंगनानी, कुथ्नौर, जरमोला), टिहरी (पिंस्वर), नैनीताल (नैनीताल, मुक्तेश्वर), पौड़ी (नागदेव, पाबो, खिरसू), चंपावत (देवीधुरा) में पाया जाता हैं। यह सिमपोडियल रिंगाल हैं अर्थात सभी कल्म एक जगह से एक साथ ही जमीन से निकलते हैं इसकी कल्म शीथ चोटीदार (conical) होती हैं। यह प्रजाति पूरे उत्तराखंड में छिटपुट एवं सामूहिक दोनों प्रकार का पुष्पन करती हैं। इसका इस्तेमाल टोकरी एवं चटाई बनाने के लिए, मछली पकड़ने की छड़ और पशु चारा के रूप में किया जाता हैं। जबकि आजकल इसका इस्तेमाल पेन स्टैंड आदि बनाने में होता हैं। इसके अतिरिक्त किसान इसको खेतों के चारों तरफ बाड़ बनाने के लिए भी करते हैं।

4.2. साररू या जमुरा रिंगाल (*Yushania anceps*): इसे *Arundinaria jaunsarensis* के नाम से भी जाना जाता हैं। इस रिंगाल की कुल ऊँचाई 4.5 मीटर तक होती हैं एवं इसकी मोटाई तकरीबन 1.0 सेंटीमिटर तक होती हैं यह 2400–2800 तक की ऊँचाई तक पाया जाता हैं। इसका उत्तराखंड में फैलाव बहुत कम है जिसमें शामिल हैं पिथौरागढ़ (मुंसियारी के खलियांग एवं हुम्मा, धारचूला के नारायण आश्रम), चमोली (औली, पूर्वी पिंडार एवं देवाल रेंज)। यह मोनोपोडियल रिंगाल हैं अर्थात सभी कल्म अलग अलग जमीन से निकलते हैं इसकी कल्म शीथ में दो औरिकले पाये जाते हैं। सभी रिंगाल में यह सबसे मजबूत और टिकाऊ माना जाता है। इसलिए इस रिंगाल की लाठियां बनायी जाती हैं। इस प्रजाति ने 1978 में चमोली क्षेत्र में सामूहिक पुष्पन किया था।

4.3. *देव रिंगाल* (*Himalayacalamus falconeri*): इसे *Thamnocalamus falconeri* के नाम से भी जाना जाता हैं। इस रिंगाल की कुल ऊँचाई 3.4 मीटर तक होती है कभी कभी यह तकरीबन 6.5 मीटर तक भी पहुँच जाता हैं। एवं इसकी मोटाई तकरीबन 2.2 सेंटीमीटर तक होती हैं इसका तना हल्के पीले रंग का होता हैं। यह सिमपोडियल रिंगाल है जिसमें सभी कल्म अलग अलग जमीन से निकलते हैं इसकी कल्म शीथ चोटीदार (conical) होती हैं। यह 1800–2800 मीटर तक की ऊँचाई में पाया जाता हैं तथा यह उत्तराखंड के पिथौरागढ़ (मुंसियारी एवं दारमा घाटी), बागेश्वर (देवल क्षेत्र के पूर्वी पिंडर एवं पिंडारी), चमोली (मंडल), टिहरी (पिंसवाड), चंपावत (देविधुरा), रुद्रप्रयाग (चोपता एवं त्रियुगीनारायण) में पाया जाता है। इस प्रजाति ने 1846–47 में ऊपरी पिंडारी नदी (बागेश्वर) के क्षेत्र में जबकि 2002 में पूरे उत्तराखंड में सामूहिक पुष्पन किया था। इसका इस्तेमाल प्रमुख रूप से टोकरियाँ एवं देवताओं को चढ़ाने के लिए ट्रे बनाने के लिए किया जाता हैं एवं इसके अतरिक्त इसका उपयोग पंखे, छतरियां, मुकुट और अन्य घरेलू सामान बनाने के लिए भी किया जाता है।

4.4. थाम रिंगाल (*Thamnocalamus spathiflorus*): इस रिंगाल की कुल ऊँचाई 3.4 मीटर तक होती हैं इसकी मोटाई करीबन 2.0 सेंटीमीटर तक होती है। यह सबसे अधिक ऊँचाई पर पायी जाने वाली रिंगाल की प्रजाति है जो कि 2500–3500 मीटर तक कि ऊँचाई पर पाया जाता है एवं यह उत्तराखंड के देहरादून (चकराता क्षेत्र के मोराच), उत्तरकाशी (हरि की दून एवं यमनोत्री), टिहरी (पिंसवाड), पिथौरागढ़ (धारचुला के नारायण आश्रम, दारमा घाटी एवं करंदम बुग्याल), दारमा घाटी), बागेश्वर (पिंडारी), चमोली (फूलों की घाटी), चंपावत (देविधुरा), रुद्रप्रयाग (चोपता, तुंगनाथ) में पाया जाता है। इसका प्रयोग कृषि औजार बनाने के लिए किया जाता हैं। यह सिमपोडियल रिंगाल हैं अर्थात सभी कल्म एक जगह से एक साथ ही जमीन से निकलते हैं इसकी पुरानी कल्म शीथ रंग में कुछ काली सी होती है। इस प्रजाति ने 2001–02 में पूरे उत्तराखंड में सामूहिक पुष्पन किया था।

5. रिंगाल एवं आजीविका: रिंगाल पहाड़ों में बसे लोगों के लिए पहले से ही जीविका का एक साधन हैं और इससे बनने वाले नये उत्पादों के कारण बहुत से अन्य लोगों को भी आसानी से जोड़ा जा सकता है। रिंगाल के हैंडीक्राफ्ट की विशेषता यह हैं कि इससे बनने वाले स्थानीय उत्पाद बहुत ही आसानी से बनाए जा सकते हैं जिनमें किसी अतिरिक्त निवेश की भी आवश्यकता नहीं होती हैं। रिंगाल से बनने

वाले उत्पादों को बहुत ही आसानी से घर में ही बनाकर घर की आर्थिक स्थिति सुधारी जा सकती है और पहाड़ों पर अपने घर में ही रोजगार पाया जा सकता है। वर्तमान में सरकार रिंगाल को एक कुटीर उद्योग के रूप में बदलने के लिए प्रयासरत है एवं इस से जुड़े व्यक्तियों एवं संस्थाओं को विकसित करने के लिए प्रयासरत है। इसके विकास का पता इसी बात से लगाया जा सकता है कि उत्तराखंड हस्तशिल्प एवं हथकरघा विकास परिषद ने गंगोत्री मंदिर समिति के साथ मिलकर रिंगाल की कंडी बनाने का काम किया है जो स्थानीय ग्रामीणों को चारधाम यात्रा से जोड़ता है। रिंगाल के परिष्कृत उत्पादों में प्लास्टिक को जनजीवन से पूरी तरह बेदखल करने की संभावना है। भारत में दिनों दिन बढ़ते प्लास्टिक के उपयोग को देखते हुए भारत सरकार ने सन 2020 तक एकल उपयोग में इस्तेमाल होने वाली प्लास्टिक को खत्म करने की घोषणा की है। रिंगाल से बनने वाली वस्तुएँ भी आसानी से इन प्लास्टिक उत्पादों का स्थान ले सकती हैं। रिंगाल उत्पादों का बाज़ार एवं भविष्य में इसकी बढ़ती माँग पहाड़ों से हो रहे लोगों के पलायन को भी रोकने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

6. रिंगाल उत्पादों को क्षरण से बचाने की स्थानीय तकनीकियाँ: स्थानीय स्तर पर रिंगाल से बनने वाले उत्पादों को कीड़ों के क्षरण से बचाने के लिए स्थानीय लोग कटे हुए रिंगाल बाँस को घर में प्रयुक्त होने वाले खाना बनाने वाले चूल्हों से थोड़ा दूर रख कर धूमित करते हैं जिसकी वजह से यह बहुत हद तक कीड़ा रोधी हो जाते हैं एवं इससे बनने वाले उत्पाद और सुंदर, चमकीले और टिकाऊ होते हैं।

7. रिंगाल की खेती की संभावनाएं: यह हम सभी को पता है कि पर्वतीय इलाकों में भी धीरे–धीरे जंगली जीव जंतुओं द्वारा फसलों को भारी नुकसान पहुँचाया जा रहा है जिसके कारण पर्वतीय किसान पारंपरिक खेती से दिन–ब–दिन दूर होते जा रहे हैं जिससे न केवल उनकी आजीविका पर संकट बढ़ रहा हैं बल्कि उनकी खेती योग्य जमीन भी बंजर होती जा रही है। ऐसे में यह किसान रिंगाल की खेती कर आर्थिक आय को बढ़ा सकते हैं।

देहरादून स्थित उत्तराखंड बाँस एवं रेशा विकास परिषद ने राष्ट्रीय बाँस मिशन योजना के साथ मिलकर इच्छुक किसानों को अपनी निजी भूमि में रिंगाल की खेती हेतु आर्थिक सहायता उपलब्ध कराने की योजना बनाई है जिसमें रिंगाल नर्सरी, पौधरोपण, रिंगाल की वस्तुएं बनाने के लिए प्रशिक्षण देना भी शामिल हैं। भारत सरकार ने 2017 में बाँसों के लिए नयी नीति लागू की है जिसमें कोई भी किसान गैर वन भूमि पर बाँस उगा कर बाजार में सीधे बेच सकता है सरकार ने इस पर काटने एवं ले जाने पर लगी रोक को हटा लिया है। आज बाजार में रिंगाल बाँस से बने उत्पादों की बड़ी मांग है एवं रिंगाल बाँस से आज के जीवन में इस्तेमाल होने वाली चीजें जैसे लैम्प शेड, गुलदस्ते, हैंगर, स्ट्रॉ, पेन, पेन स्टैंड, टेबल लैम्प, डस्टबिन, ट्रे आदि चीजें बना कर कारीगरों की आर्थिक स्थिति बढ़ाई जा सकती हैं एवं पहाड़ों से हो रहे पलायन को रोका जा सकता हैं।

8. रिंगाल बाँसो की पर्यावरणीय संतुलन में भूमिका: रिंगाल पर्यावरण संतुलन बनाए रखने के अलावा भूस्खलन को रोकने में भी सहायक हैं। यह भूमि में नमी को भी संरक्षित करता हैं। जैसा कि यह भलीभाँति ज्ञात है कि दुनिया आज जलवायु परिवर्तन की समस्या से जूझ रही है अगर उत्तराखंड की बात करें तो रिंगाल की खेती कार्बन अवशोषण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। जैसा कि हम जानते हैं कि रिंगाल एक बहुत तेज बढ़ने वाली घास है यह वातावरणीय कार्बन को अवशोषित कर कुछ भाग तनों में एवं कुछ भाग जड़ों के द्वारा जमीन में भेज देती है जो कि पर्यावरणीय संतुलन में बहुत सहायक है।

9. रिंगाल बाँसों का संरक्षण: उत्तराखंड के पहाड़ी क्षेत्रों में रहने वाले अधिकतर स्थानीय निवासी एव बाँस से जुड़े कारीगर अपनी आजीविका के लिए रिंगाल पर निर्भर हैं। आमतौर पर ये लोग रिंगाल निकटजन के जंगल से लाते हैं और अपनी घरेलू आवश्यकता एवं स्थानीय बाज़ार की माँग के अनुसार रिंगाल से निर्मित उत्पाद तैयार करते हैं। जंगल में इसकी उपलब्धता को देखते हुए इसकी खेती बहुत ही कम की जाती है जिससे इसके दूरगामी परिणाम हो सकते हैं। इसको ध्यान में रखते हुए यह बहुत जरूरी है कि विभिन्न रिंगाल प्रजातियों में पायी जाने वाली आनुवांशिक विविधिता को वैज्ञानिक रूप से जाना जाए कि वर्तमान में जंगल में मौजूद रिंगाल के बेड़े भविष्य के लिए कितने विभिन्न एवं सुरक्षित हैं, इसी हेतु देहरादून स्थित वन अनुसंधान संस्थान के आनुवांशिकी एवं वृक्ष सुधार प्रभाग द्वारा उत्तर हिमालय में पाये जाने वाले चारों रिंगाल प्रजातियों पर उनके भागौलिक विस्तार, उनकी स्वयं में आनुवांशिक विविधिताएं, उनका मूल्याकंन एवं ठोस तौर पर उनके आणविक विश्लेषण की परियोजना पर कार्य कर रहा है। प्रभाग ने रिंगाल की अन्य प्रजातियों पर किसानों के लिए

प्रवर्धन की आसान तकनीकियाँ भी विकसित की हैं। इसके अलावा वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून द्वारा रिंगाल एवं अन्य पहाड़ी प्रदेशों से लाये गए बाँसों के संरक्षण हेतु पौड़ी के निकट खिरसू नामक स्थान पर बाँस वाटिका का निर्माण किया गया है जहाँ पर इन प्रजातियों को संरक्षित किया गया है।

10.रिंगाल बाँसों का भविष्यः नये हो रहे अनुसंधानों से भविष्य में रिंगाल बाँसों की चारों ज्ञात प्रजातियों के स्वयं के अंदर की ही विभिन्नताओं की पहचान, उनके भविष्य में नये क्षेत्रों में वास विस्तारण, अधिक उत्पादन वाली रिंगाल की स्थानीय भू–प्रजातियों की खोज, लंबे समय तक उत्पादों के संरक्षण की पर्यावरण अनकूल तकनीकियों की खोजों से इससे जुड़े किसान रिंगाल बाँस की खेती के लिए अग्रसर होगें एवं उनसे बनने वाले नये संशोधित उत्पादों के निर्माण एवं विपणन से रिंगाल कारीगरों की आजीविका सुधरेगी।

डॉ. प्रवीण कुमार वर्मा
वैज्ञानिक–सी

लेखकों के लिए नियम–निर्देशः

•वन अनुसंधान ई–पत्रिका के आगामी अंकों के प्रकाशन हेतु वानिकी से संबंधित अपनी मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएं ई–मेल **hindiofficer@icfre.org** पते पर भेजने का कष्ट करें।

•रचनाएं यथासंभव टाइप की हुई हों, रचनाकार का पूरा नाम, पद एवं संपर्क विवरण का उल्लेख अपेक्षित है।

•लेखों में शामिल छायाचित्र तथा आँकड़ों से संबंधित आरेख स्पष्ट होने चाहिए।

•वन अनुसंधान ई–पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में निहित विचारों के लिए संपादक मंडल अथवा हिंदी अनुभाग उत्तरदायी नहीं होगा और इसके लिए पूरी की पूरी जिम्मेदारी स्वयं लेखक की ही होगी।

•प्रयुक्त भाषा सरल, स्पष्ट एवं सुवाच्य हिंदी भाषा हो।

स–आभार
संपादक मंडल

लिट्सिया ग्लूटिनोसा (मैदा लकड़ी) – एक उपयोगी प्रजाति

डॉ. नव बहार, वैज्ञानिक–डी, एवं श्री राम गोपाल, वरिष्ठ अनुसंधान अध्येता
वन संवर्धन एवं प्रबंधन प्रभाग, वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

विवरण

चित्र–1. मैदा लकड़ी का पेड़

लिट्सिया ग्लूटिनोसा (लौर) रॉबिन्सन एक अर्ध–सदाबहार, बहुउद्देशीय, सूखा प्रतिरोधी वृक्ष प्रजाति है और लॉरेसी परिवार के अंतर्गत आती है। भारत में, इसे आमतौर पर मैदा लकड़ी के नाम से जाना जाता है। यह छोटे से मध्यम आकार का वृक्ष है। यह वृक्ष बहुरूपी है, इसकी टहनियाँ पतली एवं शाखा युक्त होती हैं। पत्तियां गुच्छे के प्रकार के होते हैं, ये 10 से 12 जोड़े में होते हैं जो दीर्धवृत्तीय, अंडाकार, आयताकार, तरुण, रोयेदार और एंकातर क्रम में होते हैं। यह द्विलिंगाश्रयी प्रकृति का है। छाल शंकुधारी, चिपचिपा, भूरा और पीला भूरा रंग का होता है। काष्ठ मध्यम कठोर, काफी टिकाऊ और अच्छी गुणवत्ता की होती है।

वितरण

भारत, दक्षिणी चीन, मलेशिया, ऑस्ट्रेलिया और पश्चिमी प्रशांत द्वीपों में *लिट्सिया ग्लूटिनोसा* मूल रूप से पाया जाता है। यह भूटान, चीन, नेपाल, म्यांमार, फिलीपींस, थाईलैंड और वियतनाम के कई क्षेत्रों सहित पूरे एशिया में पाया जाता है। यह समुद्र तल से 500–1900 मीटर की ऊँचाई पर, वन सीमाओं, नदी, नाला स्रोतों के किनारे, कम घने जंगलों में उगता है। यह केवल सभी खुले क्षेत्रों में बहुतायत में उग नहीं जाता है, बल्कि अधिक छाया वाले क्षेत्रों और निर्जन वनों में भी जीवित रहता है।

सामान्य नाम

हिंदी – मैदा लकड़ी

जौनसारी–नौना

संस्कृत –मेदासकरू

उड़िया–जायसंडा

पंजाबी – चांदना

बंगाली–गरूर

हिमाचली – रैयान

तेलगु–नारा ममीदी

व्यापारिक नामः– मैदा लकड़ी

प्रजातियों की स्थिति

आईयूसीएन (प्रकृति और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण हेतु अंतर्राष्ट्रीय संघ) ने इस प्रजाति को संकटग्रस्त श्रेणी के अंतर्गत सूचीबद्ध किया है और इसे भारत के कुछ हिस्सों में गंभीर संकटग्रस्त एवं लाल सूची में सूचीबद्ध किया गया है। इस प्रजाति को उत्तराखंड राज्य में खतरे की श्रेणी के अंतर्गत तथा हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश राज्यों में असुरक्षित श्रेणी के अंतर्गत रखा गया है। हालांकि, जम्मू व कश्मीर राज्य में इसे संकटग्रस्त श्रेणी के अंतर्गत रखा गया है।

पुष्पन और फलन

चित्र 2. फल

पुष्पक्रम गर्भनाल प्रकार का होता है। फूल सफेद या पीले रंग के होते हैं और बरसात के मौसम में दिखाई देते हैं। फल काले गोलाकार तथा ड्रूप प्रकार के होते हैं और सितंबर – अक्तूबर के महीनों में पकते हैं।

बीज की विशेषताएँ

चित्र 3. बीज

बीज प्रकृति में रिकेल्सिट्रंट होते हैं। 100 बीजों का औसत वजन 29.85 ग्राम है।

बीजों की औसत संख्या 3358 प्रति कि.ग्रा. है।

उपयोग

• कोमल पत्तियों का उपयोग पशुओं के लिए चारे के रूप में किया जाता है।

• परिपक्व पत्तियों को पानी में भिगो कर चिपचिपा या ग्लूटिनस तरल बनाया जाता है और पारंपरिक शैम्पू के रूप में उपयोग किया जाता है।

• पत्तियों के कच्चे अर्क का उपयोग *एडीस इजिप्टी* लार्वे (डेंगू) की रोकथाम के लिए जैविक नियंत्रक के रूप में किया जाता है।

• कीटों को दूर रखने के लिए पशुशाला की छत से इसकी शाखाओं को लटकाया जाता है।

• छाल का उपयोग पेट की बीमारी, दस्त, पेचिश, सर्पदंश और ल्यूकोरिया के इलाज के लिए किया जाता है।

• तने के छाल का पेस्ट बकरी के दूध के साथ मिलाया जाता है और हड्डी के फ्रैक्चर पर उसका लेप लगाया जाता है।

• छाल के काढ़े का उपयोग घावों, खुजली, दर्द और पीड़ा में किया जाता है।

• पशु चिकित्सा में टूटी हड्डी के स्थान पर तने की छाल के पेस्ट की पट्टी बांधी जाती है और डायरिया को ठीक करने के लिए गाय को छाल का काढ़ा पिलाया जाता है।

• दवा उद्योग में, छाल म्यूसिलेज जैल का उपयोग टैबलेट बनाने के लिए बंधनकारी पदार्थ (बाइंडिंग एजेंट) के रूप में किया जाता है।

• अगरबत्ती उद्योग में जिगट (छाल उत्पाद) का उपयोग किया जाता है।

• उत्कृष्ट चिपचिपाहट और चिपकने वाले गुणों के कारण बंधनकारी पदार्थ के रूप में इसके छाल के चूर्ण से बने पेस्ट का उपयोग अगरबत्ती स्टिक एवं कोन के लिए किया जाता है, जो अगरबत्ती को निरंतर जलने में सहायता करती है।

• बीज में सुगंधित तेल (35) होता है जिसका उपयोग मोमबत्तियाँ और साबुन बनाने के लिए किया जाता है।

डॉ. नव बहार
वैज्ञानिक–डी

मध्य भारत में मौसम के उतार चढ़ाव का सागौन के कीटों की जनसंख्या वृद्धि एवं मेजबान पर संभावित क्षति का प्रभाव

डॉ. पवन कुमार, वैज्ञानिक–ई एवं श्री नाहर सिंह मावई, सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी
वन सुरक्षा प्रभाग, उष्ण कटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

सार– जलवायु, कीटों की वृद्धि और विकास सहित व्यवहार में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। तापमान, वर्षा और आर्द्रता कुछ निश्चित सीमा तक कीटों के जीवन चक्र का प्रबंधन करते हैं और इन मौसम मापदंडों में कोई भी भिन्नता किसी भी कीट के जीवन चक्र के विभिन्न चरणों में उतार चढ़ाव का कारक बनती है। इन जलवायु परिवर्तनों का कीट के खाने की क्षमता पर सीधा प्रभाव पड़ता है और इससे मेजबान वृक्ष को होने वाले नुकसान को नियंत्रित किया जा सकता है। कीटों का जीवन चक्र, जैविक और अजैविक कारकों में थोड़े से परिवर्तन से भी प्रभावित हो जाता है, ये कारक किसी भी विशेष कीट के जीवन चक्र को नियंत्रित करते हैं। मध्य भारत में सागौन वृक्ष के कंकालक (Teak skeletonizer, *Eutectona machaeralis*) और निष्पत्रक (Teak defoliator, *Hyblaea puera*) ***लेपीडोप्टेरा*** परिवार के दो गंभीर कीट हैं। ये दोनों कीट प्रजातियां सागौन की पत्तियों को खाती हैं, जो कभी–कभी पेड़ के पूर्ण विक्षेपण का कारण बनते हैं, जिससे पेड़ की वृद्धि को गंभीर नुकसान पहुँचता है। वर्षा, तापमान और आर्द्रता जैसे अजैविक कारक, कीट की दीर्घायु, लार्वा की वृद्धि और खाने की क्षमता को प्रभावित करते हैं, जो कि मेजबान के नुकसान को बढ़ाने की वजह बनते हैं। मध्य प्रदेश में वर्ष 2019 के दौरान मानसून वर्षा का अनियमित व्यवहार, जो जून के मध्य से अक्तूबर के मध्य तक जारी रहा, यह सागौन कंकालक और सागौन निष्पत्रक कीटों के उत्पन्न होने और क्षति की क्षमता को बढ़ाने का कारण बना, जिस वजह से मेजबान सागौन के नुकसान को बहुत प्रभावित किया है। अनिश्चित मौसम के प्रभाव का सागौन कंकालक और सागौन निष्पत्रक कीटों के व्यवहार और मेजबान सागौन पर क्षति का विश्लेषण करने के लिए अल्प अवधि के अध्ययन किए गए थे।

परिचय– ***टेक्टोना ग्रैंडिस,*** जिसे सागवान, सागौन आदि भी कहा जाता है, मध्य प्रदेश राज्य सहित मध्य भारत की महत्वपूर्ण इमारती लकड़ी है, इसमें विभिन्न प्रकार के कीटों के हमले का प्रभाव पाया गया है। निष्पत्रक प्रमुख कीट हैं जो सागौन पेड़ों के विकास को काफी नुकसान पहुंचाते हैं। अतीत में भी इस खतरे को नियंत्रित करने के लिए बहुत सारी प्रबंधन पद्धतियां विकसित की गई हैं। सिंथेटिक रासायनिक कीटनाशकों के उपयोग, स्थानीय वनस्पतियों और जीवों सहित पर्यावरण के लिए बहुत हानिकारक साबित हुए हैं। हाल ही में विभिन्न विधाओं के माध्यम से जैव विविधता के संरक्षण पर काफी जागरूकता पैदा की गई है। यह स्पष्ट है कि जैव विविधता की स्थिति में महत्वपूर्ण गिरावट आई है जो मुख्य रूप से मानवीय गतिविधियों और जलवायु संबंधी गड़बड़ियों के कारण हैं। एक बार विविधता खो जाने के बाद इसे दोबारा नहीं बनाया जा सकता है और यह मानव समाज के लिए स्थायी क्षति होती है। मानव समाज पूरी तरह से जैव विविधता पर निर्भर है, क्योंकि यह मानव की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। इसलिए सभी स्तरों पर इस जैव विविधता के संरक्षण, गर्म स्थानों की पहचान करने और इसके लिए उचित वातावरण बनाने एवं अस्तित्व के लिए प्रयासों की आवश्यकता है। भारत जैसे देशों में, वन अपनी जलवायु परिस्थितियों और पर्यावरण के कारण कीटों द्वारा गंभीर नुकसान उठाते हैं। विशेष रूप से मध्य भारत के उष्णकटिबंधीय जंगलों में इन कीटों से लड़ने के लिए प्रभावी उपायों की बहुत आवश्यकता है। वन, विविध वनस्पतियों और जीवों का खजाना है। वन संसाधनों के जैव संभावना के लिये अवसर बहुत अधिक हैं। कोल्ड डिसर्ट पर्यावरण क्षेत्र बहुत नाजुक पारिस्थितिकीय के होते हैं, और बदलती जलवायु परिस्थितियों और अन्य पर्यावरणीय खतरों के प्रभावों के कारण सबसे अधिक प्रभावित होती हैं। प्रचलित जलवायु परिवर्तन घटना के अतिरिक्त इस क्षेत्र में जैव विविधता के वितरण और प्रवासन में बदलाव आ रहा है (बिशप *एट आल.* 2016)। कठोर मौसम और जलवायु परिवर्तन द्वारा परागण संयोजक कैसे संशोधित होते हैं, इसके बारे में पता लगाया गया है। कई जंगली पौधों और फसलों के परागण के लिए मधुमक्खियाँ, होवरफ्लाइज़, तितलियाँ और पतंगें सहित विभिन्न कीड़े आवश्यक हैं (वेनबर्गेन, 2013)। दुर्भाग्य से कई कारक

परागण करने वाले कीटों के लिए खतरा हैं। भारत में कम से कम तितलियों की दो प्रजातियों ने हाल ही में अपने वितरण रेंज में परिवर्तन दिखाया है। रेड पायरोट, *Talicada nyseus nyseus* प्रायद्वीपीय भारत तक सीमित एक प्रजाति ने अब निम्न पश्चिम हिमालय की तलहटी और शिवालिक उत्तर भारत में उपनिवेश बना लिया है (सिंह, 2005)। जबकि एक अन्य प्रजाति, ब्राउन गोर्गन, *Meandrusa lachinus*, जिसका वितरण उत्तर–पूर्व भारत और पूर्वी हिमालय से सिक्किम तक ही सीमित था, ने अब खुद को गढ़वाल में केदारनाथ कस्तूरी मृग अभ्यारण्य, पश्चिमी हिमालय में स्थापित किया है, (सिंह, 2006) बिशप एट. आल. (2016) ने यह भी पता लगाया कि कठोर मौसम और जलवायु परिवर्तन द्वारा पौध–परागणकर्ता संबंधी परस्पर क्रिया में कैसे बद्लाव आ जाता है। वर्तमान अध्ययन सागौन कंकालक और सागौन निष्पत्रक के हमले के कारण सागौन की क्षति की स्थिति पर वार्षिक अवलोकन पर आधारित था।

अवलोकन और परिणाम– सागौन कंकालक और सागौन निष्पत्रक मध्य भारत के टीक के दो गंभीर लेपिडोप्टेरॉन कीट हैं। ये दोनों कीट प्रजातियाँ सागौन की पत्तियों को खाती हैं, जो कभी–कभी पेड़ के पूर्ण विक्षेपण का कारण बनती हैं, जिससे पेड़ की वृद्धि को गंभीर नुकसान होता है। रीनर्स एंड पेट्ज़ोल्ड (2005) ने कहा है कि जलवायु परिवर्तन के कारण समय पर रोपण अधिक अनिश्चित हो गया है। रीनर्स एंड पेट्ज़ोल्ड (2005) द्वारा प्याज के थ्रिप्स के प्रबंधन पर अध्ययन से पता चला है कि कुछ कीड़े फसलों से भारी बारिश द्वारा मारने या हटाने के लिए वर्षा के प्रति संवेदनशील होते हैं और फसल के लिए प्रबंधन विकल्प चुनते समय यह विचार महत्वपूर्ण है। शर्मा (2010) ने कहा है कि वर्ष 2009 की बरसात के दौरान मौसम में मॉनसून की शुरुआत में 45 दिनों की देरी के परिणाम स्वरूप चने की देरी से रोपाई हुई, जिससे हेलिकोवर्पा आर्मिजेरा द्वारा चने को भारी नुकसान हुआ। तापमान के साथ वर्षा में परिवर्तन कीटों, परभक्षियों, परजीवियों और रोगों को प्रभावित कर सकता हैं जिसके परिणामस्वरूप एक जटिल गतिशीलता होती है। कीड़ों के फफूंद रोगजनकों को उच्च आर्द्रता द्वारा इष्ट किया जाता है और उन घटनाओं में बढ़ावा जलवायु परिवर्तन द्वारा होता है जो उच्च आर्द्रता की अवधि को बढ़ाते हैं और उनको कम कर दिया जाता है, जिनका परिणाम सूखी परिस्थितियाँ होती है। लेविस (1997) के पहले के अध्ययन में कहा गया था कि तापमान कुछ कीटों के लिंग अनुपात को बदल सकता है जैसे कि थ्रिप्स की संभावित रूप से प्रजनन दर को प्रभावित करते हैं। बेल एट आल, (2002) ने निष्कर्ष निकाला कि मिट्टी में अधिकांश समय रहने वाले कीड़े तापमान में बदलाव से धीरे–धीरे प्रभावित होते हैं, बजाय जो जमीन से ऊपर रहते हैं क्योंकि साधारण तथ्य यह है कि मिट्टी उन्हें एक इन्सुलेट माध्यम प्रदान करती है जिससे हवा की तुलना मे बफर तापमान में बदलाव ज्यादा होने देता है। गर्म–सर्दियों के तापमान के कारण कीड़ों की कम मृत्यु दर कीट आबादी को बढ़ाने में महत्वपूर्ण हो सकती है (हैरिंगटन एट. आल, 2001)। एंड्रयू और ह्यूजेस (2005) ने बताया कि प्रति क्षेत्र कीट प्रजातियों की विविधता उच्च अक्षांश और ऊँचाई के साथ घटती है, जिसका अर्थ है कि तापमान बढ़ने से कीटों की अधिक प्रजातियों द्वारा शीतोष्ण जलवायु में मेजबान पर अधिक हमला हो सकता है (बेल एट. आल, 2002). सगौन पर कंकालक और निष्पत्रक के हमले के लक्षणों को पत्ती के नुकसान के पैटर्न से आसानी से पहचाना जा सकता है, क्योंकि कंकालक के हमले के कारण पत्तियों की नसों का कंकाल दिखाई देता है और निष्पत्रक द्वारा पूरी पत्तियों को खाया जाता है। जून 2019 के महीने के दौरान, यह देखा गया कि निष्पत्रक का भारी हमला सागौन क्षेत्र पर पूरी तरह से था। लेकिन जून के महीने के अंत में और मॉनसून की बारिश शुरू होने के साथ ही हमले कम होने लगे और जैसे–जैसे मॉनसून आगे बढ़ा हमला बहुत मामूली हो गया। अक्तूबर, 2019 के महीने तक बारिश जारी रही। जैसा कि कंकालक का हमला अगस्त या सितंबर के महीने के दौरान शुरू होता है और जंगल में पत्तों का नुकसान साफ दिखाई देने लगता है, वही साल 2019 के दौरान ऐसी स्थिति नहीं थी। कम क्षति के कारणों को इस तथ्य के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है कि कीट गतिविधि जलवायु कारकों से बहुत प्रभावित होती है (बिष्ट एट आल, 2016)। रीनर्स एंड पेट्ज़ोल्ड (2005) ने खुलासा किया कि कुछ कीड़े भारी वर्षा के कारण फसलों को मारने या हटाने के लिए संवेदनशील होते हैं। सागौन के जंगलों में लंबे समय तक मॉनसून के पैटर्न को ध्यान में रखते हुए जो मध्य जून से मध्य अक्तूबर, 2019 तक जारी रहा, हो सकता है कि दोनों कीट प्रजातियों यानी सागौन कंकालक और सागौन निष्पत्रक के अंडे सेने, खाने के व्यवहार, जीवन चक्र और दीर्घायु को प्रभावित किया हो। यह देखा गया कि सागौन के जंगल दिसंबर के महीने में भी हरे–भरे दिखाई दे रहे थे, जो कि साल के इस हिस्से के दौरान सामान्य रूप से नहीं देखा जाता है। दोनों कीटों की प्रजाति यानी सागौन कंकालक

और सागौन निष्पत्रक कुछ सागौन वनों में बहुत कम थीं। कीट की दोनों प्रजातियों यानी सागौन कंकालक और सागौन निष्पत्रक की क्षति क्षमता पर जलवायु प्रभावों को स्थापित करने के लिए लंबे समय तक निगरानी की आवश्यकता होती है।

चित्र–1: विभिन्न वृक्षारोपण स्थलों पर कंकालक (Teak skeletonizer, *Eutectona machaeralis*) द्वारा सागौन की क्षति की स्थिति।

चित्रः–2– विभिन्न वृक्षारोपण स्थलों पर सागौन निष्पत्रक (Teak defoliator, *Hyblaea puera*) द्वारा सागौन की क्षति की स्थिति।

निष्कर्ष– यह अनुमान लगाया गया है कि 2 $^{\circ}$C तापमान में वृद्धि के साथ कीटों को एक मौसम में एक से पांच अतिरिक्त जीवन चक्रों का अनुभव हो सकता है (यमामुरा और किरीटनी, 1998)। विलियम्स एट आल., (2003) ने बताया कि उच्चस्तरीय तापमान में वृद्धि जिप्सी मोथ प्रदर्शन को बढ़ाता है तथा इसके विकास के समय को कम करते हैं और इसकी उत्तरजीविता दर को बढ़ाते हैं। जैसा कि, रीनर्स एंड पेट्ज़ोल्ड (2005) ने कहा कि कुछ कीड़े भारी बारिश से फसलों को नष्ट करने के लिए वर्षा के प्रति संवेदनशील होते हैं, इसलिए सागौन पर दोनों कीट प्रजातियों सागौन कंकालक (Teak skeletonizer, *Eutectona machaeralis*) और सागौन निष्पत्रक (Teak defoliater, *Hyblaea puera*) की क्षति की क्षमता और जीवन चक्र पर जलवायु प्रभाव संभावित रूप से स्थापित करने के लिए ऐसे कारकों की निगरानी की जानी चाहिए। इसलिए, यह उचित है कि कीट प्रजातियों के जीवन इतिहास पर अध्ययन और जलवायु परिवर्तन की बदलती परिस्थितियों में परिवर्तन से जलवायु परिवर्तन के अनुसार प्रजातियों की प्रतिक्रिया का पता लगाने की हमारी क्षमता अस्पष्ट हो सकती है और तदानुसार, यह जांच करें कि कैसे प्रजातियां थर्मल वातावरण में बदलाव के लिए अलग तरह से प्रतिक्रिया करती हैं। इस तरह के अध्ययन से प्राकृतिक संसाधनों या जैविक नियंत्रक एजेंटों का उपयोग करके प्रभावशीलता के साथ सागौन पर सागौन कंकालक और सागौन निष्पत्रक की आबादी को नियंत्रित करने में मदद मिल सकती है। प्रजातियों के साथ कई जैविक और अजैविक सम्बन्ध हैं, और यह भविष्य में कीटों पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव की भविष्यवाणी करना बेहद मुश्किल है, लेकिन इन मापदंडों पर निर्णायक अध्ययन से कुछ प्रमुख कीटों की वृद्धि को निर्धारित करने में मदद मिल सकती है और साथ ही साथ मामूली कीट और आक्रामक प्रजातियां भी। कुछ संभावित अनुकूलन रणनीतियाँ जो सागौन पर सागौन कंकालक और सागौन निष्पत्रक की आबादी को नियंत्रित करने के लिए लागू की जा सकती हैं, आईपीएम को विकसित करने वाले प्राकृतिक जैविक नियंत्रण एजेंटों (पैरासाइट्स, पैरासाइटोइड्स, प्रीडेटर्स आदि) से विकसित हो सकती हैं। सिमुलेशन मॉडलिंग जैसी हालिया तकनीकों का उपयोग करके कीट पूर्वानुमान लगाया जा सकता है। जैसा कि कहा गया है, कीड़े भारी बारिश से फसलों को मारने या हटाने के लिए अग्रणी वर्षा के प्रति संवेदनशील हैं और सागौन पर सागौन कंकालक और सागौन निष्पत्रक के खाने और नुकसान का आकलन करते समय यह विचार महत्वपूर्ण है। यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि लगातार भारी बारिश या तो कीट लार्वा को खाने या लार्वा ताक़त को कम करने की अनुमति नहीं देती है। इस प्रकार लार्वा को मेजबान पर क्षति के लिए रोकती है। लंबे समय तक निगरानी के लिए लार्वा के कीट की दीर्घायु और दोनों कीट प्रजातियों की क्षति की क्षमताएँ यानी सागौन कंकालक और सागौन निष्पत्रक पर जलवायु प्रभावों को कम करने की आवश्यकता होती है ताकि वर्ष के दौरान दोनों कीटों के प्रकोप की भविष्यवाणी करने के लिए पूर्वानुमान प्रणाली विकसित की जा सके।

संदर्भ–

1. एंड्रयू, एन.आर. और ह्यूजेस, एल. (2005). डाइवर्सिटी एंड अस्सेम्ब्लेज स्ट्रक्चर ऑफ़ फाइटोफैगस हेमिप्टेरा अलोंग ए लेटिटूडिनल ग्रेडिएंटः प्रीडिक्टिंग द पोटेंशियल इम्पेक्ट्स ऑफ़

क्लाइमेट चेंज. *ग्लोबल इकोलॉजी एंड बायोग्राफी,* 14: 249–262.

2. बेल, जे.एस., मास्टर्स, जी.जे., होडकिंसन, आई.डी., अवमेक, सी., बेज़मीर, टी.एम., ब्राउन, वी.के., बटरफील्ड, जे., बस, ए., कुलसन, जे. सी., फर्रर, जे., गुड, जे.ई.जी., हेरिंगटोन, आर., हार्टले,ज़ेड., वाट, ए. डी. एवं व्हिटकेर, जे.बी. (2002)। हेर्बीवोरी इन ग्लोबल क्लाइमेट चेंज रिसर्चः डायरेक्ट इफेक्ट्स ऑफ़ राइजिंग टेम्परेचर ऑन इन्सेक्ट हेर्बिवॉर्स। *ग्लोबल चेंज बायोलॉजी,* 8: 1–16. बिशप, जे.; जोन्स, एच. ई.; लुकक, एम. एवं ज्यॉफ्री, एस. 2016। पोटसा एग्रिक इकोसिस्ट एनवीरों, 220: 89–96

3. हेरिंगटोन, आर., फ्लेमिंग, आर.ए. एवं वोइवोड, आई.पी. (2001). क्लाइमेट चेंज इम्पैक्टस ऑन इन्सेक्ट मैनेजमेंट एंड कंज़र्वेशन इन टेम्प्रेट रिजिओन्स : कैन दे बी प्रेडिक्टेड? *एग्रीकल्चरल एंड फारेस्ट एंटोमोलोजी,* 3: 233–240.

4. लेवीस, टी. (1997). मेजर क्रॉप्स इन्फेस्टेड बाय थ्रिप्स विथ मैन सिम्पटम्स एंड प्रीडोमिनेंट इंजूरियस स्पीशीज (अपेंडिक्स II). *थ्रिप्स एस क्रॉप पेस्ट्स* (टी. लेवीस द्वारा संपादित), पृष्ठ 675–709. सी.ए. बी. इंटरनेशनल, न्यू यॉर्क, यूएसए.

5. न्यू, टी.आर. (1900–92). *कंज़र्वेशन ऑफ़ बटरफ्लाईज़ इन ऑस्ट्रेलिया. जे. रेस. लेपिड,* 29(4): 237–253.

6. रेनर्स, एस. एंड पेटज़ोल्ड्ट, सी. (2005). *इंटीग्रेटेड क्रॉप एंड पेस्ट मैनेजमेंट गाइडलाइन्स फॉर कमर्शियल वेजिटेबल प्रोडक्शन*। कॉर्नेल कोआपरेटिव एक्सटेंशन पब्लिकेशन, 124 वी.जी.

7. शर्मा, एच.सी. (2010). इफ़ेक्ट ऑफ़ क्लाइमेट चेंज ऑन आईपीएम इन ग्रेन लेगुमस। इनः फिफ्ट इंटरनेशनल फूड लेगुमस रिसर्च कॉन्फ्रेंस (आईएफ़एलआरसी वी) एंड द सेवेन्थ यूरोपियन कॉन्फ्रेंस ऑन लेगुमस (एईपी VII), 26–30 अप्रैल 2010. अंतालैया, टर्की।

8. सिंह, ए.पी. (2005) इनिशियल कोलोनाइजेशन ऑफ़ रेड पिएरोत बटरफ्लाई, *तालिकाडा नीसेउस गुएरीन* (लीसैनिडी) इन द लोअर वेस्टर्न हिमालयाज : एन इंडिकेटर ऑफ़ द चेंजिंग एनवायरनमेंट. *करेंट साइन्स,* 89 (1): 41–42.

9. सिंह, ए.पी. (2006). रेंज एक्सटेंशन ऑफ़ ब्राउन गोर्गों बटरफ्लाई, *मींडरूसा ग्यस ग्यस* ईंटो केदारनाथ मश्क डियर रिज़र्व, वेस्टर्न हिमालयाजः ए लैसर नोन स्पीशीज फ्रॉम नार्थ–ईस्ट इंडिया। *इंडियन फ़ॉरेस्टर,* 132(2): 187–189.

डॉ. पवन कुमार
वैज्ञानिक–ई

जंगली अनार (प्यूनिका ग्रेनेट्म) – एक उत्तम वन्य फल

श्री ज्वाला प्रसाद, तकनीकी अधिकारी, सोनिका शर्मा, वरिष्ठ तकनीशियन, श्री मंजीत कुमार, तकनीशियन एवं श्री नीरज कुमार, परियोजना सहायक
हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, पंथाघाटी, शिमला, (हि. प्र).

परिचय

जंगली अनार (*Punica granatum*) वनों में पाये जाने वाले फलों में से एक महत्वपूर्ण फल है। स्थानीय भाषा में इसे डालिम, दाड़ू, डाडू और धरन के नाम से जाना जाता है। जंगली अनार एक अनूठा जंगली फल है, जिसे इसके अम्लीय गुणों की अधिकता के कारण बहुत महत्व मिला है। इसके फलों में अच्छी मात्रा में एंटीऑक्सिडेंट एवं अन्य औषधीय गुण पाए जाते हैं। इसमें कार्बनिक अम्ल, *एन्थोसायनिन*, *फीनोलिक्स*, विटामिन और खनिजों जैसे प्राकृतिक एंटीऑक्सिडेंट और स्वास्थ्य के लिए उपयोगी घटक होने के कारण, हाल के वर्षों में इसके मूल्य वर्धित उत्पादों की मांग बढ़ गई है।

जंगली अनार मध्य एशिया का एक महत्वपूर्ण जंगली फल है जो कि *प्यूनिकेसी* (punicaceae) फ़ैमिली से संबन्धित है तथा पीयूनिका जीनस का सदस्य है। यह मूल रूप से ईरान और पश्चिमी हिमालय श्रृंखला में पाया जाता है तथा ईरान, अजरबैजान, अफगानिस्तान, पाकिस्तान, उत्तरी भारत, रूस और भूमध्यसागरीय क्षेत्र में भी इसकी खेती की जाती रही है। भारत में, जंगली अनार हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड तथा जम्मू और कश्मीर के मध्य पहाड़ी क्षेत्रों में पाया जाता है। यह मुख्यतः बाहरी हिमालय की सूखी और उप सीमांत भूमि में समुद्र तल से 900 से 1800 मीटर की ऊँचाई वाले क्षेत्रों में पाया जाता है। जंगली अनार उत्तरी भारत में फैला है तथा यह हिमाचल प्रदेश में सूखी ढलानों वाले उपोष्णकटिबंधीय से उप–समशीतोष्ण क्षेत्रों में पाया जाता है। हिमाचल प्रदेश में यह सोलन, सिरमौर, मंडी, शिमला, कुल्लू और चंबा जिलों के कुछ स्थानों में वितरित है। हिमाचल प्रदेश में जंगली अनार के सबसे महत्वपूर्ण केंद्रों में से एक दारलाघाट है, जो शिमला से लगभग 50 किमी. दूर है। दारलाघाट शब्द का शाब्दिक अर्थ जंगली अनार के पेड़ों का एक दर्रा या स्थान है।

सामान्य विवरण

यह एक सीधा, कंटीला, कड़ी शाखाओं वाला पर्णपाती वृक्ष या झाड़ी है जो 4–8 मीटर तक ऊँचा होता है। मार्च के मध्य में इसमें हल्के लाल रंग के नए पत्ते दिखाई देते हैं और दिसम्बर माह में हलके पीले रंग के पत्ते झड़ जाते हैं। इसके पत्ते विपरीत, लेंसोलेट, चमकदार, 3–5.5 से.मी. लंबे, 1–1.7 से.मी. चौड़े, पूरे मार्जिन, पिटिओल् वाले और पतले होते हैं। फूल सेसाइल, इब्रेक्टीएट, एक्टिनोमोर्फिक, उभयलिंगी, अकेला या 2.4 के अक्षीय समूहों में, परसिस्टेंट कैलीक्स, कोरोला पॉलीपेटेलस और अंडाशय में कई ओव्यूल्स होते हैं। फल ग्लोबस, परसिस्टेंट कैलीक्स, कठोर छाल वाले हलके हरे और पीले तथा परिपक्वता पर लाल रंग के होते हैं। इसके बीज कोणीय आकार के होते हैं तथा ऐरिल जो इसका खाद्य भाग बनाता है उसका रंग लाल या गुलाबी सफ़ेद होता है।

जंगली अनार में फूल लगने का मौसम सामान्यतः मध्य अप्रैल से मई माह के अंत तक होता है। अगस्त के पहले सप्ताह से लेकर सितंबर माह के अंत तक फल आने का अनुकूल समय है।

कीट

पेड़ सामान्यतः बीमारियों और कीटों से मुक्त रहते हैं। परंतु *विराचोला आइसोक्रेटस* (*Virachola isocrates*) इस फल का सबसे मुख्य कीट है और इस फल को भारी क्षति पहुंचाता है। वास्तव में, यह कीट जंगली अनार की खेती में बाधक होने का मुख्य कारक है। इस कीट के कैटरपिलर बारिश के मौसम में फलों के सड़ने और समय से पहले गिरने के लिए उत्तरदायी होते हैं। इसे फूल लगने की अवस्था में 15–20 दिनों के अंतराल पर डाइमेथोएट (0.045) के 3–4 छिड़काव द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है।

नर्सरी तकनीक

जंगली अनार प्राकृतिक रूप से उपोष्णकटिबंधीय से समशीतोष्ण जलवायु में मिलता है। यह कैल्सियम युक्त गहरी दोमट तथा अच्छे रिसाव वाली कम उपजाऊ मिट्टी में पनपता है।

नर्सरी में जंगली अनार को सामान्यतः बीजों द्वारा तैयार किया जाता है। बीजों का रोपण दिसम्बर माह में किया जाता है। बीजों को रोपण करने से पूर्व 24 घंटे तक ठंडे पानी में भिगोने के उपरांत अच्छी तरह से साफ किया जाता है।

प्रायः बीज जनवरी माह के अंत तक अंकुरित हो जाते हैं। सामान्यतः बीजों को अंकुरित होने के लिए 40 से 45 दिन का समय लग जाता है। नर्सरी में दो साल के रख रखाव के उपरांत पौधा क्षेत्र में पौधरोपण के लिए तैयार हो जाता है। इसके

अतिरिक्त अनार के पौधों को बरसात के मौसम में स्टेम कटिंग विधि द्वारा भी उगाया जा सकता है।

पौधरोपण के लिए गड्ढों के बीच 3 3 मी. की दूरी होनी चाहिए। गड्ढों में ऊपरी सतह की मिट्टी को 20 कि.ग्रा. सड़े गले गोबर के साथ मिलाकर तथा 220 ग्रा. एनपीके के मिश्रण के साथ भरना चाहिए। कटिंग लगाने के बाद मिट्टी को अच्छी तरह से बैठाने के लिए पौधों में पानी देना चाहिए। जंगली अनार पौधों को रूट सकर, वॉटर शूट क्रॉस ब्रैंचेस, बीमार टहनी तथा पेड़ को आकार देने को छोड़ कर प्रुनिंग की जरूरत नहीं होती। फल आम तौर से छोटे स्पर्स पर लगते हैं जो उन परिपक्व शूट से उत्पन्न होते हैं, जिनमें 3–4 वर्षों तक फल धारण करने की क्षमता होती है।

वयस्क पेड़ को जनवरी–फरवरी के महीने में 15 किलोग्राम एफवाईएम और 300 ग्राम एनपीके के मिश्रण (2: 1: 1 अनुपात) की जरूरत होती है। इसके पौधे रोपण के 4 साल के उपरांत फलने लगते हैं और फल की उपज आकार और पेड़ की उम्र के अनुसार बदलती रहती है। विभिन्न अध्ययनों के दौरान इसकी औसत उपज 32.4 किलोग्राम प्रति पेड़ दर्ज़ की गयी है।

अनार शुष्क क्षेत्रों में आसानी से उगाया जा सकता है। अधिक नमी वाले स्थानों में पेड़ों की जड़ को फंगल रोगों से क्षय होने का खतरा हो सकता है। इसका पौधा -12^0C तक के तापमान को सहन कर सकता है।

औषधीय और अन्य उपयोग

जंगली अनार का मुख्य उपयोग अनारदाना बनाने के लिए किया जाता है, जिसका उपयोग चटनी बनाने में और विभिन्न सामग्रियों में खट्टे पदार्थ के रूप में किया जाता है।

अनार के बीज को गूदे यानी एरिल के साथ सुखाया जाता है, जिसके उत्पाद से "अनारदाना" बनता है।

यद्यपि सुखाने की क्रिया के दौरान संरचनात्मक और भौतिक–रासायनिक संशोधन परिवर्तन होते हैं जो अंतिम उत्पाद की गुणवत्ता को ताजा उत्पादों की गुणवत्ता की तुलना में प्रभावित कर सकते हैं। एंजाइमैटिक और ऑक्सीडेटिव प्रक्रियाओं के कारण इसे क्षति नहीं पहुंचती जिससे इसका भंडारण सामान्य तापमान पर आसानी से किया जा सकता है। अम्लीय गुण होने के कारण सूखे अनारदाने को चटनी में मसाले के रूप में उपयोग किया जाता है और यह उत्तर भारतीयों के कुछ प्रसिद्ध व्यंजनों में एक अलग स्वाद जोड़ता है।

सूखे फल का छिलका खट्टा होता है और दस्त तथा पेचिश के उपचार में नयी पत्तियों और ताजा फलों के रस का उपयोग किया जाता है। इससे तेज़ पीली डाई की प्राप्ति होती है, जिसका उपयोग बालों और कपड़ों को डाई करने के लिए किया जाता है। पक्के फल टॉनिक, लैक्सेटिव होते हैं और यह रक्त वृद्धि में भी सहायक होते हैं। इसके अतिरिक्त यह गले में खराश, आंखों में खराश और मस्तिष्क की बीमारियों और सीने की तकलीफों को दूर करने में भी उपयोगी है। छाल में एक अल्कलॉइड प्यूनिसिन होता है, जो टेपवर्म के लिए अत्यधिक विषैला होता है तथा इसे बाहर निकालने के लिए उपयोग किया जाता है। फूलों की कलियों का उपयोग ब्रोंकाइटिस के उपचार में किया जाता है।

पारंपरिक चिकित्सा में अनारदाने को पेट दर्द, सूजन, हाइमनोलेटिडोसिस, अपच, ब्रोंकाइटिस और हृदय संबंधी समस्या के उपचार में आयुर्वेदिक दवाओं के रूप में उपयोग किया जाता है ।

सूखे हुए छिलके से एक तेज पीली डाई निकलती है, जिसका इस्तेमाल कपड़े और बाल डाई करने के लिए किया जाता है। जंगली खट्टे अनार के फल विटामिन और खनिजों के समृद्ध स्रोत हैं। इसके फल के रस से बहुत अच्छा स्क्वैश तैयार किया जा सकता है। इस उद्देश्य के लिए तकनीकों का मानकीकरण किया जाना चाहिए। इसके पेड़ की लकड़ी बहुत कठोर और टिकाऊ होने के कारण आम तौर पर इसका उपयोग कृषि औजार बनाने में किया जाता है।

निष्कर्ष

जंगली अनार एक महत्वपूर्ण जंगली फल है। इसके औषधीय एवं अन्य गुणों के कारण बाज़ार में इसकी अत्याधिक मांग की वजह से अच्छी कीमत प्राप्त होती है। यह पौधा सूखा प्रतिरोधी है तथा इसकी प्राकृतिक स्थितियों में मृत्यु दर बहुत कम है। इस पेड़ को बंजर भूमि में व्यावसायिक पैमाने पर सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है, जिसमें व्यावहारिक रूप से खेती की कोई लागत नहीं होती है। जंगली अनार के पेड़ की उपज को बढ़ाने के लिए कीटों के विरुद्ध उपयुक्त नियंत्रण उपाय किए जाने चाहिए। इसके उपरोक्त गुणों एवं अच्छी क्षेत्र अनुकूलता होने के कारण वन विभाग के विभिन्न पौधरोपण कार्यक्रमों में इसे बड़े पैमाने पर अपनाया जा रहा है।

ज्वाला प्रसाद
तकनीकी अधिकारी

सहजन (*मोरिंगा ओलिफेरा*) – एक बहुउद्दे'ीय वृक्ष

अनुभा श्रीवास्तव, वैज्ञानिक–सी, श्री योगेश कुमार अग्रवाल, कनिष्ठ परियोजना अध्येता, रामबीर सिंह[1], वैज्ञानिक–डी एवं श्री अमित कुमार कुशवाहा, क्षेत्र सहायक
पारि–पुनर्स्थापन वन अनुसंधान केन्द्र, प्रयागराज
[1]वैज्ञानिक–डी, विस्तार प्रभाग, वन अनुसंधान संस्थान,देहरादून

परिचय

मोरिंगा को सहजन, ड्रमस्टिक, मुनगा तथा सोजाना नाम से जाना जाता है । यह *मोरिंगेसी* कुल का सदस्य है। मोरिंगा तमिल भाषा के मुरूंगई से लिया गया है, जिसका अर्थ त्रिकोणीय मुड़ा हुआ फल होता है। यह तेजी से बढ़ने वाला वृक्ष है। भारत का सहजन उत्पादन में प्रथम स्थान है। इसका वार्षिक उत्पादन 1.1 से 1.3 मिलियन टन है। सहजन पोषक तत्व युक्त होने के कारण अधिक लाभकारी वृक्ष है। भारत में सहजन की बड़े स्तर पर व्यवसायिक खेती की जाती है। सहजन के पेड़ पर सामान्यतः एक वर्ष में एक बार फूल व फिर फल लगते हैं। इसका फल लंबा तथा पतला हरे रंग का होता है, जो पेड़ की शाखाओं पर लटका रहता है। इसका पौधा लगभग 4–6 मीटर ऊँचाई का होता है तथा इसमें 90–100 दिनों में फूल आना आरम्भ हो जाते हैं। पौधा लगाने के लगभग 160–170 दिनों में फल तैयार हो जाते हैं तथा आवश्यकता के अनुसार विभिन्न अवस्थाओं में फलों का निष्कर्षण किया जाता हैं। सहजन की प्रमुख प्रजातियाँ कोयम्बेटूर 1, कोयम्बेटूर 2, पी.के.एम. 1, पी.के.एम. 2 तथा रोहित 1 हैं।

सहजन का उपयोग

सहजन बहुउद्देशीय पौधा है, इसके सभी भागों का उपयोग भोजन, दवा, औद्योगिक कार्यों आदि में किया जाता है। इसमें प्रचुर मात्रा में पोशक तत्व व विटामिन उपलब्ध होते हैं। सहजन की छाल, पत्ती, जड़, गोंद आदि से आयुर्वेदिक दवाइयाँ तैयार की जाती हैं, जो अनेक प्रकार की बीमारियों में लाभप्रद होती हैं।

औषधीय उपयोग

सहजन के पेड़ का हर एक भाग बहुत लाभकारी होता है, जो अनेक बीमारियों के उपचार में उपयोग किया जाता है। बीमारियों के उपचार में अधिकतर फलियों का इस्तेमाल किया जाता है। इसमें क्लोरोजेनिक एसिड होता हैं, जिसमें एंटी–ओबेसिटी गुण मौजूद होते हैं। इसकी फलियों व पत्तियों में एंटी–कैंसर और एंटी–ट्यूमर गुण होते हैं जो कि कैंसर जैसी बीमारी को कम करते हैं। एंटी–डायबिटिक गुण के कारण इससे मधुमेह के स्तर को कम करने में भी मदद मिलती है। सहजन को कैल्शियम, मैग्नीशियम और फॉस्फोरस का अच्छा स्रोत माना गया है जो कि हड्डियों को स्वस्थ रखने में मदद करता है। सहजन की पत्तियों में एंटीऑक्सीडेंट पाये जाते हैं जो हृदय सम्बन्धी समस्याओं को कम करने में सहायक होते है। सहजन की पत्तियों के एथनोलिक एक्सट्रैक्ट में एंटी–एनीमिया गुण होने के कारण इससे हीमोग्लोबिन के स्तर में सुधार आता है। सहजन मस्तिष्क सम्बन्धी बीमारी को कम करता है। इसमें क्वारसेटिन नामक फ्लैवेनॉल होते हैं जिसके कारण लीवर क्षति में सुधार आता है। सहजन का इस्तेमाल संतुलित मात्रा में करने से शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता में सुधार होता है। सहजन की पत्तियों का सेवन करने से पेट दर्द व अल्सर आदि से बचा जा सकता है, साथ ही सहजन की छाल के उपयोग से पाचन क्रिया को सुधारा जा सकता है। सहजन के एंटीबैक्टीरियल, एंटीवायरल व एंटीफंगल गुण त्वचा के रैशेज, त्वचा संबंधी संक्रमण या त्वचा की बीमारियों को कम करते हैं।

इसके पौधों से गूदा निकालकर कपड़ा व कागज उद्योग में काम में आता है।

इसकी पत्तियों, फूलों और बीजों से सूप बनाया जाता है जो कि बहुत ही फायदेमंद होता है।

इसकी पत्तियों का काढ़ा उच्च रक्तचाप को कम करता है। चक्कर और उल्टी से भी काढ़ा लाभकारी है।

पत्तियों को सरसों के तेल में पकाकर लगाने से मोच का दर्द ठीक हो जाता है। जोड़ों के दर्द में भी यह फायदेमंद है।

पत्तियों को उबाल कर पीने से नेत्र रोग का निदान होता है। पत्तियों को चबाने से पायरिया में फायदा होता है। दांत के कीड़े और मुंह के छालों की समस्या भी दूर होती है।

कैल्शियम की प्रचुरता के कारण इसकी फली हड्डी और दांत मजबूत करती हैं विशेषतः बच्चों के लिए यह अधिक लाभकारी है।

आयरन, मैग्नीशियम और फॉस्फोरस से भरी इसकी फली शरीर को स्वस्थ रखती है। फॉस्फोरस अतिरिक्त कैलोरी व वसा को कम करता है, इसलिए यह मोटापा घटाने में भी सहायक है।

सहजन की फली में विटामिन–ए की प्रचुर मात्रा होती है। यह चेहरे को चमकदार बनाए रखती है। मधुमेह रोगियों के लिए भी सहजन बेहद लाभकारी है।

एक–एक चम्मच सहजन की पत्तियों का रस शहद और नारियल का पानी मिला कर पीने से पाचन शक्ति बढ़ती है। इससे हैजा, पेचिस पीलिया और कोलाइटिस जैसी बीमारियाँ भी ठीक हो जाती हैं।

सहजन के बीज को घिसकर सूंघने से सिरदर्द दूर हो जाता है, जबकि पत्तों का पेस्ट बनाकर सिर पर लगाने से भी सिरदर्द में लाभ होता है। सहजन का सेवन सर्दी–जुकाम से बचाता है। उपरोक्त सहजन का उपयोग चिकित्सीय/वैद्य की सलाह से ही करना चाहिए।

सहजन के पौष्टिक उपयोग

सहजन की पत्तियों तथा फलियों में प्रचुर मात्रा में प्रोटीन, विटामिन, खनिज व अनेक पोषक तत्व भरपूर मात्रा में उपलब्ध होते हैं। इसकी पत्तियों व फलियों में विटामिन सी – संतरे से सात गुना, विटामिन ए – गाजर से चार गुना, कैलशियम – दूध से चार गुना, पोटेशियम – केले से तीन गुना तथा प्रोटीन – दही की तुलना में तीन गुना होते हैं।

चारा तथा खाद उपयोग

पत्तियां मवेशी, भेंड़, बकरी, सुअर, मुर्गी और खरगोश आदि आसानी से खा लेते हैं और मछली के भोजन के रूप में भी इसका उपयोग किया जा सकता है। यदि चारे के रूप में इसकी पत्तियों का उपयोग किया जाये तो पशुओं के दूध में डेढ़ गुना व वजन में एक तिहाई से अधिक की वृद्धि का अनुमान है। इसकी पत्तियों के रस को पानी में मिलाकर उस घोल का छिड़काव यदि फसल पर किया जाये तो इससे फसल उपज में भी वृद्धि होती है। सहजन से प्रति हैक्टेयर 650 मेट्रिक टन हरे पदार्थ की उपज प्राप्त होती है, जो कि अन्य हरी फसलों की अपेक्षा अधिक बायोमास पैदा करता है।

पर्यावरणीय उपयोग

सहजन का उपयोग वायुरोधी, बाड़ और छाया के पेड़ के रूप में किया जाता है। यदि वायुरोधी के रूप में उपयोग किया जाता है, तो उस स्थिति में पेड़ों की कलम की जगह बीजों से प्रसारित करना चाहिए जिससे वह एक मजबूत नलिका विकसित कर हवा प्रतिरोध में सुधार कर सके।

वितरण एवं महत्व

सहजन का मूल क्षेत्र हिमालयी तलहटी (भारत/बांगलादेश) है। एक वाणिज्यिक फसल के रूप में यह भारत और अफ्रीका के कुछ हिस्सों में बड़े पैमाने पर उगाया जाता है।

जलवायु

सामान्यतया 25–30 $^{\circ}$C औसत तापमान इसके विकास के लिए उपयुक्त रहता है। यह ठंड को सहन करने की क्षमता रखता है, किन्तु पाला इसके लिए हानिकारक होता है। फूल आने के समय 40 $^{\circ}$C तक तापमान उपयुक्त रहता है, इससे अधिक तापमान पर फूल झड़ने लगते हैं। वर्षा का इस पर कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ता है। यह सभी प्रकार की पारिस्थितिक अवस्थाओं में उगाया जा सकता है।

मृदा एवं खादः–

सभी प्रकार की मृदाओं में इसकी खेती की जा सकती है। इसको बेकार बंजर भूमि तथा कम उर्वराशक्ति वाली भूमि में भी आसानी से उगाया जा सकता है, लेकिन व्यवसायिक खेती के लिए 6–7.5 पी.एच. मान वाली बलुई दोमट मिट्टी इसके लिए उपयुक्त होती है। सहजन की खेती में यदि 15 किग्रा गोबर की खाद प्रति गड्ढा तथा एजोसपिरिलम और पी.एस.बी. (15 किलोग्राम/हेक्टेयर) दर से प्रयोग करने पर जैविक सहजन की खेती द्वारा बिना किसी हानि के अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती है।

प्रवर्धन :–

इसका प्रवर्धन मुख्य रूप से बीज व कलम द्वारा किया जाता है, लेकिन अच्छी वृद्धि व अधिक उपज प्राप्त करने के लिए बीज द्वारा प्रवर्धन उपयुक्त रहता है।

पौधशाला की तैयारी

सहजन की पौधशाला तैयार करने के लिए 18 सेन्टीमीटर ऊँचाई 12 सेन्टीमीटर चौड़ाई वाले पॉली बैग का उपयोग करते हैं। पॉली बैग में 3 भाग मिट्टी व 1 भाग बालू भरा

जाता है। प्रत्येक बैग में 2 सेन्टीमीटर गहराई में बीज को लगा कर पानी का हल्का छिड़काव करते हैं। बीज का अंकुरण 5 से 12 दिनों में शुरू हो जाता है जब पौधे की लम्बाई 60 सेन्टीमीटर से 90 सेन्टीमीटर हो जाये तब पौधे को बाहर खेत में रोप देना चाहिए।

बीज द्वारा:–

मोरिंगा के पौधे आसानी से बीज द्वारा उगाए जा सकते हैं, और भारत में व्यवसायिक उत्पादन के लिए प्रत्यक्ष बीजारोपण सबसे आम तरीका है। बीज को सीधे तैयार गड्ढों में या पॉलीथीन बैग में उगाकर गड्ढों में लगाया जाता है। पॉलीथीन बैग में एक महीने में पौधे लगाने योग्य तैयार हो जाते हैं। पौधों को खेत में लगाने के लिए 45 45 45 सेमी के आकार के गड्ढे तैयार किये जाते हैं, और फिर गड्ढे के बीच में बीज को बोया जाता है। बीज बुवाई के 10–15 दिन बाद अंकुरित हो जाता है।

कलम द्वारा:–

प्रवर्धन के लिए कलम कम से कम एक साल पुरानी लकड़ी, 4–16 सेमी व्यास में और 5 फीट तक लंबी होनी चाहिए। कलम को अच्छी तरह से मिट्टी में गाड़ देना चाहिए। यदि सीधे बीजारोपण का उपयोग नहीं किया जाता है, तो पत्ती उत्पादन के लिए पंक्तियों की दूरी 0.75 मीटर 1 मीटर व फली उत्पादन के लिए 2.5 मीटर 2.5 मीटर पर अच्छी तरह से काटी गई कलम को खेत में प्रत्यारोपित कर देना चाहिए। जल निकासी में सुधार के लिए सतह से ऊपर बनी क्यारी का उपयोग किया जा सकता है।

सिंचाई:–

अच्छे उत्पादन के लिए सिंचाई करना लाभप्रद है। गड्ढे में यदि बीज से प्रवर्धन किया गया है, तो बीज के अंकुरण और अच्छी तरह से स्थापन तक नमी का बना रहना आवश्यक है। वानस्पतिक विकास के लिए शुष्क अवधि के दौरान सिंचाई की आपूर्ति की जानी चाहिए।

प्रबंधन

पौधे जब लगभग 75 सेमी. के हो जायें तब पौधों के ऊपरी भाग की कटाई कर देनी चाहिये, इससे आस–पास से शाखाओं को निकलने में आसानी होती है। प्रत्येक वर्ष जब फसल पूर्ण हो जाती है तब मोरिंगा के पेड़ों को जमीन से 1 मीटर की ऊँचाई से काटा जाता है। कटाई के बाद पौधे पुनः चार से पाँच महीने बाद तैयार हो जाते हैं। उत्पादन चक्र के समय तीन बार कटाई की जाती है।

पुष्पन एवं फलन

फूल आमतौर पर रोपण के 4–12 महीने बाद आते हैं। फूल लगने के समय खेत ज्यादा सूखा या ज्यादा गीला रहने से दोनों ही अवस्था में फूल के झड़ने की समस्या होती है। साल में दो बार फल देने वाली सहजन की किस्मों की तुड़ाई सामान्यतयाः फरवरी–मार्च और सितम्बर–अक्तूबर में की जाती है। प्रत्येक पौधे से लगभग 40–50 किलोग्राम सहजन प्राप्त हो जाती है। सहजन की तुड़ाई बाजार और मात्रा के अनुसार 1 से 2 माह तक चलती है। सहजन के फल में रेशा आने से पहले ही तुड़ाई करने से बाजार में मांग अधिक रहती है और इससे लाभ अधिक मिलता है।

कृषि वानिकी

सहजन सूखा सहन करने वाला पौधा है, इसलिए सहजन के साथ ऐसी फसलों को लगाना चाहिए जो सूखा सहन करने वाली हों। कृषि वानिकी में पौधे रोपने हेतु 6 6 मी. की दूरी उचित रहती है। बेल वाली फसलें जैसे– करेला, तोरई, सेम तथा टमाटर, मिर्च, करी पत्ता, बाजरा, चारा, ज्वार, रागी, दालें व मूंगफली आदि फसलों की सहजन के साथ खेती की जा सकती है। छोटी जगह में सहजन के पेड़ों को अक्सर कसावा, कद्दू और अन्य सब्जियों के साथ लगाया जाता है। वाणिज्यिक उत्पादन में सहजन को अक्सर एक ही फसल (मोनोक्रॉप) के रूप में उगाया जाता है। सहजन को न्यूनतम सिंचाई सुविधाओं की आवश्यकता होती है। इसके लिए कम मात्रा में खाद व उर्वरक की आवश्यकता होती है।

चित्रः 1 सहजन आधारित कृषिवानिकी पद्धति में बैंगन की खेती

चित्र–02: सहजन के फूल

चित्र–03: सहजन की फलियाँ

सहजन के मूल्य सवंर्धित व्यवसायिक उत्पाद

मूल्य सवंर्धित उत्पादों का व्यवसाय शुरू करने के लिए विशेष रूप से सहजन के उत्पादन और वितरण से संबधित समस्याओं को ध्यान में रखना बहुत आवश्यक है। साथ ही बाजार की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए व्यवसाय हेतु आगे की रणनीति के अनुसार उत्पादन लेने से उत्पादन एवं लाभ दोनों में वृद्धि संभव है। सहजन में उपलब्ध पोषक तत्वों के अधिकतम उपयोग के लिए इसके विभिन्न भागों से निर्मित उत्पादों को इससे तैयार किया जाता है। अधिक मांग के अनुसार स्थानीय किसान सहजन के इन उत्पादों को आसानी से तैयार कर सकते हैं।

1. सहजन पत्ती चूर्ण (लीफ पाउडर)

इसको बनाने के लिए सहजन की साफ व स्वस्थ पत्तियों को अच्छी प्रकार से पीसकर बनाया जाता है, जिसे भोजन और सूप में उपयोग किया जाता है या इसे गर्म पानी में डालकर भी सीधे पी सकते हैं। सहजन की पत्तियों के पाउडर को डिब्बों में भरकर आसानी से विक्रय किया जा सकता है। अच्छी भंडारण की स्थिति में तथा शुद्ध होने पर सहजन चूर्ण/पाउडर को 180 दिनों (लगभग 6 महीने) तक सुरक्षित रखा जा सकता है। इसकी बाजार कीमत लगभग 650 – 750 रूपये प्रति किलोग्राम है।

चित्र: 4–6: सहजन चूर्ण

2. सहजन गोली और कैप्सूलः–

सहजन पाउडर/चूर्ण की गोलियाँ और कैप्सूल भी बनाये जाते हैं। यह एक पोषक तत्व औषधि व टॉनिक के रूप में उपयोग में लाई जाती है, जो बाजार में अनेक प्रकार के ब्रांड व पैकेजिंग में मिलती हैं। इसकी बाजार कीमत लगभग 400–500 रु. प्रति 120 गोली व कैप्सूल है।

चित्र: 7–9: सहजन गोलियाँ, तेल, पत्ती चूर्ण

3. सहजन तेल

इसके बीज से करीब 38–40 प्रतिशत तेल मिलता है। अनेक औषधीय गुणों से भरपूर मोरिंगा तेल को "बेन तेल" के नाम से भी जाना जाता है। इसे कोल्ड प्रेसिंग या सॉल्वेंट एक्सट्रेंशन विधि द्वारा निकाला जाता है। सहजन के बीज का तेल त्वचा के लिए काफी लाभदायक होता है। इसका इस्तेमाल घड़ियों में भी किया जाता है। इसकी बाजार कीमत लगभग 1000–1500 रु. प्रति लीटर है।

4. मोरिंगा फ्लेवर्ड चाय

सहजन की पत्तियों से चाय व पोषण हेतु विभिन्न प्रकार के उत्तेजक पेय पदार्थ बनाए जाते हैं। वर्तमान समय में मोरिंगा चाय को काफी पसंद किया जा रहा है, जिससे आने वाले वर्षों में मोरिंगा चाय की और मांग बढ़ सकती है। सहजन की पत्तियों को चाय बनाने वाली फर्म को बेचकर लाभ कमा सकते हैं।

5. मोरिंगा हनी

किसान मोरिंगा के बगीचे में मधुमक्खियों के बॉक्स रख सकते हैं। मोरिंगा के फूलों के रस से मधुमक्खियों द्वारा एकत्रित शहद को औषधीय गुणों युक्त माना जाता है, जिसे चेहरे व त्वचा पर प्रयोग किया जाता है। इसका बाजार मूल्य भी अच्छा होता है।

6. मोरिंगा फूल

मोरिंगा के सूखे फूलों को गर्म/ठंडी चाय में मिलाया जाता है या सलाद और सूप में इस्तेमाल किया जाता है। किसान फूलों को सुखाकर इन्हें विभिन्न प्रकार से प्रयोग तथा बाजार में भी बेच सकते हैं।

7. मोरिंगा बायो–बूस्टर

मोरिंगा पत्तियों के अर्क को जैविक पौधों की वृद्धि को बढ़ावा देने के लिए एक पर्ण स्प्रे का उपयोग किया जा सकता है, जिससे कम लागत में फल, वृक्षों व फूलों का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है।

8. मोरिंगा चिप्स तथा बिस्कुट

सहजन की फलियों से चिप्स तथा पत्तियों से बिस्कुट तैयार किया जाता है जिन्हें अलग अलग प्रकार की सामग्री डालकर अधिक स्वादिष्ट बनाया जाता है। चिप्स तथा बिस्कुट को अच्छी तरह सीलबंद करके बाजार में विक्रय किया जा सकता है तथा इससे अच्छी कीमत प्राप्त की जा सकती है। इसके अतिरिक्त मोरिंगा की छाल का तेल, शैम्पू, साबुन, फेस क्रीम, सूप मिक्स, ड्रोप्स आदि मोरिंगा के अन्य मूल्यवान उत्पाद हैं।

चित्रः 10–11: सहजन चिप्स तथा बिस्कुट

सहजन की खेती से आर्थिक लाभः

सहजन की व्यवसायिक खेती, पत्तियों तथा फलियों (पॉड) हेतु की जाती है। एक हेक्टेयर क्षेत्र से प्रति वर्ष यदि केवल पत्तियों से लाभ लेना हो तो 2 2 मीटर की दूरी पर 2500 वृक्ष लगाये जा सकते हैं। औसतन लगभग 0.3 कुन्तल ताजी पत्तियाँ प्रति वृक्ष से मिलने पर कुल क्षेत्र से 75 टन उत्पाद प्रतिवर्ष प्राप्त किया जा सकता है। इसी प्रकार यदि फलियों का उत्पादन लेना है तो 6 6 मीटर की दूरी प्रति हेक्टेयर रखने पर लगभग 280 वृक्ष लगाये जाते हैं। प्रतिवर्ष कुल क्षेत्र से लगभग 14 टन तथा प्रति वृक्ष 0.5 कुन्तल फलियां प्राप्त की जा सकती हैं।

प्रति वृक्ष पौधा रोपण व्यय लगभग रु. 40 से 45 है। पत्तियों द्वारा प्रति हेक्टेयर क्षेत्र से प्रतिवर्ष लगभग 1.5 से 2.0 लाख तथा फलियों से लगभग 1.0 से 1.25 लाख तक लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

निष्कर्ष

सहजन एक बहुउपयोगी पौधा है। यह लगभग 300 रोगों में संजीवनी बूटी का कार्य करता है, अतः इसके विभिन्न भागों के बने उत्पादों से न केवल पोषण प्रतिपूर्ति संभव हो सकती है, बल्कि इसके मूल्य सवंर्धित उत्पादों के विक्रय से किसानों को अच्छी आय भी प्राप्त होती है। पिछले कई वर्षों से किसान सहजन की खेती से अच्छा लाभ प्राप्त कर रहे हैं। यह मृदा सुधारक भी है तथा मृदा की संरचना व उर्वरता में वृद्धि का कार्य करता है। यदि किसान सहजन को कृषि वानिकी के रूप में अपनाता है तो अपनी मुख्य फसल के साथ–साथ अतिरिक्त आय प्राप्त कर सकता है। सहजन के विभिन्न भागों से बहुमूल्य उत्पाद बनाये जाते हैं, जो कि बेरोजगार युवकों के लिए एक अच्छे व्यवसाय का मुख्य साधन होगा। कुछ उत्पादों को उत्पादक किसान अपना कर

अच्छी गुणवत्ता वाले मूल्य वर्धित उत्पाद बना सकते हैं तथा अपनी आय बढ़ा सकते हैं। इसके अलावा अन्य किसान भी व्यवसायिक फसलों के साथ (कृषिवानिकी पद्धति में) मोरिंगा के वृक्ष लगा सकते हैं जिससे एक ओर तो आय बढ़ेगी, वहीं दूसरे किसानों को भी इसके उत्पाद के लिए प्रोत्साहन मिलेगा। इस प्रकार की फसलें कम लागत में अधिक लाभ देकर स्थायी विकास को प्रोत्साहित करती हैं तथा अन्य लगाई गई सह फसलों के उत्पादन में होने वाले नुकसान को भी कम करती हैं।

संदर्भ

1. https://moringafarms.com/shop
2. एईएसए बेस्ड आईपीएम–ड्रमस्टिक (2014). कृषि एवं सहकारिता विभाग, कृषि मंत्रालय, भारत सरकार की एक रिपोर्ट।
3. https://kisansamadhan.com
4. https://www.gaonconnection.com
5. https://www.drshikhasharma.com/product/moringa-powder-100-gram-tin/
6. https://www.importitall.co.za/Moringa-Pita-Chips-

अनुभा श्रीवास्तव
वैज्ञानिक–सी

महोगनी–इमारती लकड़ी, औषधीय गुणों से भरपूर व कृषि वानिकी के लिए एक महत्वपूर्ण वृक्ष प्रजाति

श्री वेदपाल सिंह, वैज्ञानिक–सी
वन संवर्धन एवं प्रबन्धन प्रभाग, वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

परिचयः महोगनी उष्ण कटिबंधीय गर्म जलवायु की एक वृक्ष प्रजाति है। इस प्रजाति की उत्पत्ति अमेरिका/दक्षिणी अमेरिका में हुई है, इसका वैज्ञानिक नाम *Swietenia macrophylla* और कुल *Meliaceae* (*मेलियेसी*) है। महोगनी, अमेरिका महाद्वीप से लेकर एशिया और अफ्रीका में उगाया जा रहा है। एशिया महाद्वीप में यह भारत, पाकिस्तान, इन्डोनेशिया, बांग्लादेश, फिलीपिन्स, पेसिफिक व मलेशिया में काफी मात्रा में उगाया जा रहा है। भारत में सर्वप्रथम यह वृक्ष केरल में लगाया गया। इसके बाद यह तमिलनाडु, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश व अभी कुछ वर्षों से यह उत्तरी भारत के कुछ प्रदेशों में व्यवसायिक वानिकी के रूप में इसका वृक्षारोपण प्रारम्भ किया गया। इस प्रजाति को सम्रुद तल की ऊँचाई से 50 मीटर से 1400 मीटर तक के ऊँचाई वाले क्षेत्रों में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। इसके लिए वर्षा 1500 मिमी. से लेकर 4000 मिमी. तक व तापक्रम 23° C से 38° C तक में उगाया जा सकता है।

प्रजाति का महत्व : महोगनी इमारती लकड़ी के लिए एक बहुत महत्वपूर्ण प्रजाति है। इसकी लकड़ी से फर्नीचर, पानी का जहाज, नाव, वाद्ययन्त्र, दरवाजें, खिड़कियाँ, खिलौने, तथा अन्य सजावट का सामान इत्यादि बनाया जाता है। इसकी बनी हुई चीजों की अर्न्तराष्ट्रीय बाजारों में भी बहुत माँग है जिससे विदेशी मुद्रा अर्जित की जा सकती है। इसकी लकड़ी से प्लाईवुड भी बनायी जा सकती है साथ ही यह कैबिनेट फिटिंग, घरों के अन्दर उत्तम फिनिशिंग, डिजाईनिंग में भी बहुत सुन्दर लगती है। इसके अतिरिक्त इसकी लकड़ी के मॉडल, टूल्स केस, घड़ी, प्रिन्टर ब्लाक आदि बनाया जाता है।

यह प्रजाति, कृषि वानिकी के लिए भी बहुत शानदार है क्योंकि इसकी वृद्धि सीधे ऊपर की ओर होती है इसको मध्यम आकार वाले (Crown) आकार में भी विकसित किया जा सकता है। यह तेजी से बढ़ने वाला पौधा है। शुरु के वर्षों में यह बहुत तेजी से बढ़ता है जिसमें खेती के काम में इस प्रजाति से कोई रूकावट नहीं आती हाँलाकि इस प्रजाति का परिपक्व लम्बा होता है लेकिन लगाने के 15–16 वर्षों के पश्चात् इसकी कटाई की जा सकती है। यह वृक्ष हमेशा हरा भरा रहता है। इसका तना सीधे बढ़ता है तथा मध्यम आकार 70–80 फीट तक इसकी बढ़वार हो जाती है इसकी लकड़ी हल्की व काफी मजबूत होती है।

इसकी जड़ें जमीन के अन्दर काफी गहरी (Deep rooted) जाती हैं इसलिए इसकी जड़ों में पोषक व पानी के लिए होने वाली प्रतिस्पर्धा कम पायी जाती है। इसके अतिरिक्त इस प्रजाति का स्टैण्ड प्रबन्धन जैसे उर्वरक देने की प्रक्रिया, कटाई छँटाई व पौधों के बीच में दूरी बनाकर अच्छी प्रकार से किया जा सकता है। इस पौधे की कृषि वानिकी के द्वारा सतत् वानिकी प्रबन्धन में भी अहम भूमिका है। इससे जैव–विविधता को बढ़ावा, जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम करने, स्थानीय लोगों को रोजगार देने का काम भी कृषि वानिकी के द्वारा किया जा सकता है।

इसकी पत्तियों से कीटनाशक दवाईयाँ भी बनायी जाती हैं इसकी पत्तियों के रस से मच्छर भगाने की दवाई भी बनायी जाती है। इसके बीज का उपयोग औषधी बनाने के लिए किया जाता है। इसके बीज व फल से बी.पी. (B.P.) की दवाई भी बनायी जाती है इसके फलों से लिवर व किडनी की दवाईयाँ भी बनायी जाती हैं। इसके अलावा इसके बीज से तेल निकलता है जो कड़वा होता है इससे पेट के कीड़े मारने की दवाई भी बनायी जाती है। इसकी छाल भी चमड़े को रंगने, सुखाने व टैनिंग के काम आती है साथ ही इसके गोंद का भी औषधीय महत्त्व है तथा कई तरह की दवाईयों में यह काम आता है।

महोगनी का प्रवर्धन बीज से पौधे तैयार कर किया जाता है उत्तम गुणों वाले पौधे अच्छे प्रकार के बीजों से तैयार किये जाते हैं। इसके बीजों की अंकुरण क्षमता 70–80 प्रतिशत तक पायी गयी है तथा बीजों की अंकुरण क्षमता (Viability) एक वर्ष तक मिल जाती है। हाँलाकि पुराने बीज में अंकुरण प्रतिशत कम मिलता है यदि अच्छी प्रकार उनको भंडारित नहीं किया गया है। अच्छी प्रकार से पके फलों को एकत्र

करके, इसके फलों को 2 दिन तक घर के अन्दर रख कर बीजों को फलों से निकाल कर, बीजों की बुवाई कर देनी चाहिए। इसके 1000 बीजों का भार 400–500 ग्राम होता है। तथा इसके बीजों को बंद डिब्बे में 2 ^{0}C से 6 ^{0}C तापक्रम पर भंडारित करना चाहिए।

इसके बीजों को ड्रिल से 2–4 सेमी. गहराई पर पौधशाला में बोना चाहिए। इसके बीजों में अंकुरण 10–15 दिनों बाद शुरू होता है और 25–30 दिनों में अंकुरण प्रक्रिया पूरी हो जाती है। नर्सरी में पानी का उचित प्रबन्ध करना चाहिए मिट्टी को आवश्यकतानुसार नम (गीली) बनाये रखें, साथ ही क्यारियों में अच्छा खाद, जल निकास व छाया का प्रबन्ध करना चाहिए। नर्सरी में अंकुरित पौधों से 70–80 प्रतिशत तक पौधे मिल जाते हैं। चूँकि इसके पौधे की वृद्धि बहुत तेज गति से होती है अतः 4–5 महीने के नर्सरी में तैयार पौधे रोपण हेतु उपलब्ध हो जाते हैं, छोटे पौधों का तना सीधा, पतला और शाखाएं तने पर जमीन के 2 से 3 मीटर से आती हैं।

चित्रः 01–02: महोगनी के पेड़ एवं पौधे

महोगनी के पौधों के लिए जलोढ़ या कछारी मिट्टी, भारी चिकनी मिट्टी व दोमट मिट्टी रोपण व वृद्धि के लिए उपयुक्त होती है। इसके लिए भूमि का पी.एच. मान 6.5 से 7.5 तक ठीक रहता है, जल भराव को यह सहन नहीं करता। इसके पौधे का रोपण लाईन से लाईन में 3 मीटर पर व पौधे से पौधे की दूरी 2.5 मीटर के अन्तराल पर लगाये जाते हैं। पौधे लगाने के लिए गड्ढे का आकार 45 सेमी. लम्बा, 45 सेमी. चौड़ा व 45 सेमी. गहरा गड्ढा तैयार करके उसमें 12–15 किलोग्राम कम्पोस्ट या सड़ी हुई गोबर की खाद या केंचुआ खाद मिलाकर पौधों का रोपण करना चाहिए। पौधों की अच्छी बढ़वार के लिए इसमें प्रति पौधा 3.5 ग्राम नाइट्रोजन, 2.5 ग्राम फॉस्फोरस व 3.5 ग्राम पोटाश की मात्रा भी देनी चाहिए। जिससे पौधे की वृद्धि व विकास तीव्र गति से होगा। समय–समय पर शुरु में 10 से 15 दिन बाद पौधों को पानी या आवश्यकतानुसार पानी देना चााहिए लेकिन अतिरिक्त पानी नहीं होना चाहिए।

पौधों की रोपाई के 6–7 वर्ष पश्चात् छटनी करनी चाहिए। बिना शाखा के तनों को 10 मीटर तक रखना चाहिए। अच्छी वृद्धि हेतु पौधों का अन्तराल कम कर देना चाहिए। शुरुआत में इसकी वृद्धि बहुत तेज गति से होती है तथा वृद्धि की गति जमीन की स्थिति, जलवायु तथा पौधों की देखभाल पर निर्भर करती है। पौधे की ऊँचाई एक वर्ष में 3 से 3.5 मीटर तक आसानी से हो जाती है और दूसरे वर्ष में इसके पौधे की ऊँचाई 6–7 मीटर तक हो जाती है। पौधों की ऊँचाई अधिकतम 5 से 15 वर्षो में अधिक होती पायी गयी है और तने के व्यास में वृद्धि 5–10 वर्षो में अधिक होती है और टिम्बर में वृद्धि 20–25 वर्षो के दौरान अधिक होती है। इसके पौधों पर बीज वृक्षारोपण के 8–10 वर्षो में आने शुरू हो जाते हैं, फूलों में परागण मधुमक्खी, भंवरों तथा अन्य कीटों द्वारा होता है, इसका फल 10 से 11 महीने में परिपक्व हो जाता है इसके पौधों में कई तरह की बीमारियाँ व कीट पंतगे लगते हैं लेकिन कोई विशेष हानि बीमारियों से नहीं होती, लेकिन पौधों को दीमक से बचाने के लिए विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है। समय–समय पर दीमक से बचाव हेतु उपचार करना चाहिए।

कटाई (Harvesting):-महोगनी के पौधों/वृक्षों का Rotation (चक्र) वैसे तो लम्बा होता है लेकिन इसके पौधों की कटाई 15–20 वर्ष के पश्चात् की जा सकती है। क्योंकि इस वृक्ष प्रजाति की लकड़ी की माँग बाजार में बहुत ज्यादा है व लकड़ी का उपयोग अनेक सामान बनाने में होता है इसलिए इसकी लकड़ी की कीमत काफी मंहगी "सागौन" की लकड़ी की तरह ही होती है। अतः इसके पौधों को लगाने पर प्रति एकड़ रिटर्न अन्य प्रजातियों की तुलना में बहुत ज्यादा मिलता है।

वेदपाल सिंह
वैज्ञानिक–सी

गम्हार (*मेलाइना आरबोरिया*) के प्रमुख कीट

पूजा सिंह, कनिष्ठ परियोजना अध्येता एवं डॉ. सुधीर सिंह, वैज्ञानिक–जी
वन संरक्षण प्रभाग, वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

गम्हार *लैमिएसी* (पहले *वरबिनेसी*) कुल का एक महत्वपूर्ण सदस्य है। यह एक तेजी से बढ़ने वाला पर्णपाती वृक्ष है। गम्हार को अन्य नामों से भी जाना जाता है जैसे भद्राणी, गंभारी, कंधार का पेड़, कैशमेरी सागौन, सफेद सागौन, इत्यादि। यह वृक्ष नम क्षेत्र पूर्वी उप हिमलायी ट्रैक, असम और दक्षिण भारत के मिश्रित वनों में अपना सबसे बड़ा आयाम प्राप्त करता है। इसके अलावा यह गंगा–मैदान, अरावली पहाड़ श्रंखला के नम अर्ध–पर्णपती और खुले जंगलों में 1500 मीटर की ऊँचाई तक पाया जाता है। भारत के अतिरिक्त यह वृक्ष म्यांमार, थाइलैंड, नेपाल, भूटान, बांग्लादेश, चीन के दक्षिणी प्रांतों में भी स्वाभाविक रूप से पाया जाता है।

यह 30–40 डिग्री सेल्सियस तापमान, 60–100 आर्द्रता और 450–750 मि. मी. वार्षिक वर्षा में अच्छी तरह पनपता है। यह रेतीली दोमट मिट्टी के साथ नम उपजाऊ घाटियों में प्राथमिक रूप से पाया जाता है। वृक्ष 30 मीटर ऊँचा और 4.5 मीटर तक की गोलाई प्राप्त करता है। इसकी छाल हल्के भूरे रंग की होती है। फूल भूरे रंग के, फरवरी से अप्रैल महीनों के दौरान लगते है, जबकि मई से जून तक फल लगते हैं।

चित्र.1
गम्हार का वृक्ष

चित्र. 2
गम्हार का फल एवं फूल

गम्हार अपनी उत्कृष्ट लकड़ी के कारण एक महत्वपूर्ण वृक्षारोपण प्रजाति है। इसकी लकड़ी वजन में हल्की एवं मजबूत होने के कारण घरों के निर्माण कार्य (दरवाजे, खिड़की, अलमारी इत्यादि) फर्निचर, खेल के सामान, संगीत वाद्ययंत्र बनाने में किया जाता है। इस प्रजाति की लकड़ी कागज उद्योग के लिए लुगदी का एक उत्कृष्ट स्रोत है।

चिकित्सीय उपचार में इसका उपयोग – इसकी जड़ें बुखार, अपच, बवासीर, पेट में दर्द, ह्रदय रोग में किया जाता है। इसकी जड़ें 'दशमूला' आयुर्वेदिक दवा का एक महत्वपूर्ण घटक है जो पाचन शक्ति को बढ़ाता है और स्मृति में सुधार करता है। इसकी पत्तियों का लेप सिरदर्द से राहत के लिए लगाया जाता है। फूल मीठे, शीतल, कड़वे और कसैले होते हैं जिनका इस्तेमाल कुष्ठ और रक्त रोगों में किया जाता है। सर्पदंश के उपचार के लिये इसकी जड़ और छाल का काढ़ा लाभदायक होता है। सर्पदंश और बिच्छू डंक के उपचार के लिए अन्य दवाओं के संयोजन में इस पौधे का प्रयोग किया जाता है। गम्हार की पत्तियाँ मवेशियों के लिए एक पौष्टिक आहार मानी जाती हैं। इसकी पत्तियाँ एरी रेशम–कीट (एरी सिल्कवर्म) को भी खिलाई जाती हैं।

अलमारी

संगीत वाद्ययंत्र

चम्मच

दरवाजा

सजावटी सामान

पलंग

हस्तशिल्प की कृतियाँ

औषधीय चाय

दशमूलारिष्ट

चित्र 3–11: गम्हार की लकड़ी व अन्य हिस्सों से निर्मित विभिन्न उत्पाद

वृक्ष के कीट: गम्हार वृक्ष में लगभग 47 कीट प्रजातियाँ के प्रकोप की समस्या देखी गई है जिनमें सबसे अधीक 34 कीट पर्णनाशी,13 प्ररोह बेधक (शूट बोरर) और कुछ इस के फूलों, फलों और बीजों को नुकसान पहुँचाते हैं। इन प्रमुख कीटों के नाम निम्नलिखित तालिका में दिए गए हैं:

क्रम संख्या	कीट का नाम	क्षति पहुँचाने की प्रकृति	वृक्ष का प्रभावित अंग
1	*टिंजिस बीसोनी (हेमीप्टेरा)*	रस–चूसक कीट	पत्ते
2	*एपीब्लेमा फुलविलीनिया (लेपिडोप्टेरा)*	पर्णनाशी	पत्ते
3	*क्रेसपेडॉन्ट लियाना (कोलियोप्टेरा)*	पर्णनाशी	पत्ते
4	*यूपटेरोटे उंडटा (लेपिडोप्टेरा)*	पर्णनाशी	पत्ते
5	*इंडरबेला कुवादरिनोटाटा (लेपिडोप्टेरा)*	छाल नाशी	छाल
6	*जाइलेबोरस फॉरेनिक्टस (कोलियोप्टेरा)*	प्ररोह बेधक	तना
7	*जाइलुटस सिरेमिका (लेपिडोप्टेरा)*	प्ररोह बेधक	तना
8	*कॉप्टोटरमिस कुरविगनाथस (आइसोप्टेरा)*	छाल नाशी	तना
9	*ऐम्ब्रोसिया बीटल (कोलियोप्टेरा)*	तना बेधक	तना

तना कीट (स्टेम इंसेक्टस):

जाइलेबोरस फॉरेनिकेटस (*Xyleborus fornicates*) को एक गंभीर प्ररोह बेधक (शूट बोरर) कीट बताया गया है,यह कीट लकड़ी के तने में छेद कर एक विशेष गैलरी या सुरंग का निर्माण करती है। इसके अतिरिक्त ***जाइलुटस सिरेमिका*** (*Xyleutus ceramica*) को भी भारत में गंभीर कीट के रूप में दर्ज किया गया है। मलेशिया में विशेष रूप से ***ऐम्ब्रोसिया*** बीटल ताजा कटे लकड़ियों के लट्ठों को नुकसान पहुँचाते हैं। प्राकृतिक रूप से दीमकों का भी भारी संक्रमण देखा गया है, यह प्रजातियाँ विशिष्ट रूप से जीवित वयस्क वृक्षों को हानि पहुँचाती हैं एवं वृक्ष को पूर्ण रूप से खोखला कर देती हैं।

पत्ता कीट (लीफ इंसेक्टस):

विशेष रूप से 34 कीटों की सूचना दर्ज है जो इस वृक्ष के पत्तों को अनेक प्रकार से प्रभावित करते हैं, जिनमें 3 ***लेपिडोप्टेरा***, 6 ***हेमिप्टेरा***, 25 ***कोलियोप्टेरा*** गण के कीट हैं। पूर्वोत्तर, पूर्व व उत्तर भारत में सबसे अधिक पत्तों को खाने वाला ***कैलोपेपला लियाना*** (*Calopepla leayana*) है। दक्षिण भारत में ***टिंगिस बीसोनी*** (*Tingis beesoni*)सब से अधिक क्षति पहुँचाने वाला कीट है जो बड़ी समूहप्रियता से पत्ती के बड़ी शिराओं से रस चुसते हैं जिसके कारण पत्तियाँ धब्बेदार हो जाती हैं और गिर जाती हैं। इसके अतिरिक्त ***एपीब्लेमा फुलविलीनिया***(*Epiblema fulvilinea*) को भी प्रमुख पत्ता कीट के रूप में दर्ज किया गया है।

चित्र–12: *जाइलेबोरस फॉरेनिकेटस*

चित्र–13: *टंगीस बीसोनी*

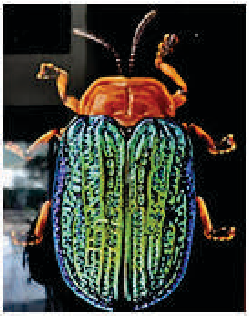

चित्र–14: *कैलोपेपला लियाना*

कैलोपेपला लियाना (*Calopepla leayana*) सबसे विध्वंसक पर्णनाशी कीट है, यह भारत में एक वर्ष में 2000 एकड़ से अधिक युवा वृक्षारोपण को नष्ट करने के लिए जाना जाता है। यह पहली बार मेघालय से दर्ज किया गया था। यह बीटल *क्राइसोमेलिडी* परिवार का सदस्य है और गम्हार की पत्तियों के पृष्ठीय पक्ष को गोलाकार छिद्रों में काटकर खाता है एवं इसकी कलियों का भी भक्षण करता है। इस कीट द्वारा पर्णपात पहली बार बारिश की शुरुआत में देखा गया है और अक्तूबर तक जारी रहता है। इस बीटल की लंबाई 6–12 मिमी, चमकीले हरे व मोर के रंग का होता है एवं इसके एलीटरा पर लंबी–लंबी झुरियाँ पायी जाती हैं। इसके जीवन चक्र में पाँच स्टार लार्वा होते हैं एवं 30–35 दिनों की जीवन चक्र अवधी होती है। इसके लार्वा चरण में ही 18–20 दिन लगते हैं, पूर्ण विकसित लार्वा पत्ती पर प्यूपेट करता है। मई में वयस्क बीटल शीतनिद्रा से लौटते हैं और पहले उपलब्ध गम्हार के वृक्ष पर अपने अंडे देते हैं। एक मादा 18 अंडों का कवच बनाती है, जिनमें से प्रत्येक में 32–65 अंडे होते हैं।

गम्हार के पौधों के बहुउद्देशीय उपयोगिता एवं महत्व की वजह से वर्तमान लेख तैयार किया गया है। यह भारत में पाये जाने वाली सबसे विश्वसनीय लकड़ी में से एक मानी जाती है, इसकी लकड़ी लंबे जीवन के साथ, बेहद टिकाऊ श्रेणी में आती है और किसी परिरक्षक की आवश्यकता नहीं होती है। हाँलाकि यह एक महत्वपूर्ण प्रजाति है लेकिन इसको कई कीटों द्वारा क्षति पहुँचायी जाती है। अतः इस प्रजाति के संरक्षण पर विशेष रूप से ध्यान देने की आवश्यकता है। साथ ही आनुवंशिक व जैव प्रौद्योगिकी का उपयोग करते हुए वृक्ष पर लगने वाले विभिन्न प्रकार के कीटों के खिलाफ प्रतिरोधक क्षमता विकसित करने की भी आवश्यकता है।

पूजा सिंह
कनिष्ठ परियोजना अध्येता

महुआ – औषधीय, स्वास्थ्यवर्धक एवं व्यापारिक दृष्टिकोण से

श्री राहुल निषाद, शोध छात्र, श्री आलोक यादव, वैज्ञानिक–ई, श्री राजकुमार, शोध छात्र
पारि–पुनर्स्थापन वन अनुसंधान केंद्र, प्रयागराज (उ.प्र.)

परिचय–

पादप जगत में कुछ पौधों में विशेष पोषण युक्त भोजन प्रदान करने के साथ–साथ रोगों के उपचार की विशिष्ट क्षमता होती है। ऐसे पौधों के फल, फूल, बीज, छाल का प्रयोग मानव, खाद्य एवं आय के साधन के रुप प्राचीन काल से ही करता आ रहा है। इन्हीं बहुउद्देशीय प्रजातियों में महुआ एक प्रमुख वृक्ष है, जो पर्यावरणीय विकास में अपना योगदान देने के साथ–साथ भोजन, चारा, लकड़ी, ईंधन एवं औषधीय रुप में प्रयोग किया जाता रहा है।

महुआ *(Madhuca longifolia)* भारत के उष्णकटिबन्धीय क्षेत्र में पाये जाने वाला ***सपोटेसी*** परिवार का पर्णपाती वृक्ष है, जो उत्तर भारत के मैदानी इलाकों और जंगलों में बड़े पैमाने पर पाया जाता है। महुए की ऊँचाई 16 से 20 मीटर होती है। तने की मोटाई का व्यास औसतन 80 सेमी. तक होता है। तने का ऊपरी भाग कई शाखाओं से युक्त एवं वृत्ताकार स्वरुप में होता है। शाखाओं के अंत में पत्तियाँ एकांतर एवं गुच्छेदार होती हैं सामान्य पत्ती 10 से 25 सेमी. लम्बी व 6 से 12 सेमी. चौड़ी होती है। नई पत्ती लाल भूरे रंग की होती है। महुए की जड़ें उर्ध्वाधर एवं क्षैतिज रुप में भूमि में फैली होती हैं। इसकी छाल भूरी एवं लाल रंग की होती है जिसे कुरेदने पर सफेद रंग का द्रव बाहर निकलता है। सामान्यत: वर्ष भर महुए की पत्ती हरी भरी रहती हैं परन्तु वार्षिक रुप से मार्च–अप्रैल में इसकी पत्तियाँ शाखाओं से गिरना प्रारम्भ करती हैं। इस दौरान महुए में फूल आना शुरू होता है। महुए के समस्त भागों में फूल सबसे महत्वपूर्ण है। महुए का पूर्ण विकसित फूल रस युक्त पीले रगं का होता है। इसकी मादक सुगन्ध कीट–पतंगों, पशु–पक्षियों को अपनी ओर आकर्षित करती है, जो इसे आहार के रुप में बड़े चाव से खाते हैं। मानव के सन्दर्भ में महुए का फूल अति महत्वपूर्ण अवयव है। प्रमुख रुप से इसका संचयन पौष्टिक आहार के रुप में किया जाता है। खाद्य पदार्थों के रुप में इसका सेवन करने के कई रुप प्रचलित हैं। ताजे अथवा सूखे फूल का रस निकाल कर गेहूँ के आटे के साथ मिला कर, कई प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजन बनाये जाते हैं। सूखे महुए की कुटाई कर इसे तिल, सरसों का तेल एवं गुड़ के साथ मिला कर लम्बे समय तक आकस्मिक भोजन के रुप में इस्तेमाल होता है। इन खाद्य पदार्थों को भारत के अलग–अलग क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न नामों से जाना जाता है। पूर्वी उत्तर प्रदेश के जनपद प्रयागराज के आस–पास के क्षेत्रों में इसे ठोकवा (पूड़ी), गुलगुला, लपसी (हलुआ), सेठउरा (लड्डू), इत्यादि नामों से जाना जाता है। अपनी उच्च पोषकता एवं निम्नवर्गीय परिवारों तक सुलभ उपलब्धता के कारण इसे गरीबों का मेवा कहा जाता है। महुए के फूल के पोषण स्तर पर हुए शोध से इसमें निम्नलिखित तत्वों की उपस्थिती ज्ञात की गयी है।

महुए के फूल के पोषक तत्व

घटक	उपस्थित मात्रा (प्रतिशत में)
नमी	19.8
प्रोटीन	6.37
वसा	0.50
पूर्ण शर्करा	54.06
कैल्शियम	8.00
फॉस्फोरस	2.00
अन्य	4.36

(स्रोतः कुरील इत्यादि 2009)

ज्ञात अवयव में शर्करा की उपस्थिति उल्लेखनीय है। इसमें पायी जाने वाली प्राकृतिक चीनी पॉलिसेकेराइड के जटिल ग्लूकोज अणुओं की उपस्थिति से महत्वपूर्ण हो जाती है। महुए के फूल से प्राप्त चीनी का उपयोग मधुमेह जैसे रोगों को पनपने की संभावना को क्षीण करता है। बाजार में उपलब्ध शर्करा से बनने वाले उत्पाद चॉकलेट, जैम एवं अन्य उत्पाद में महुए के फूलों से प्राप्त शर्करा सहित अन्य पोषक तत्वों का उपयोग, कृत्रिम चीनी युक्त अन्य हानिकारक उत्पादों की उपयोगिता को नकारने का विकल्प प्रदान करत है।

इसका पेड़ बीस–पच्चीस वर्षों में फूलने और फलने लगता

है और कई वर्षों तक फूलता–फलता है। महुआ में फूल की अवधि 20–22 दिन की होती है। उसके पश्चात् उसमें फल लगना आरम्भ होता है। महुए का फल हरे रंग एवं दीर्घवृत्ताकार होता है। यह गुदादार होता है। पका फल शर्करा का अच्छा स्रोत होता है। मनुष्य, पशु–पक्षी इसे खाना पसन्द करते हैं। सभी फलों की तरह इसमें भी बीज होता है। इसके बीज की ऊपरी परत भूरे लाल रंग की और अंतरिक द्विबीजपत्रीय होता है। इसके बीजों से तेल निकाला जाता है। तेल निकालने के पश्चात् इसकी खली जानवरों को खिलायी जाती है तथा खली का इस्तेमाल उर्वरक के रुप में भी होता है।

चित्र–01: नर्सरी में महुआ की पौध

चित्र–02:महुआ का बाग

चित्र–03: महुआ के फूल

चित्र–04: महुआ का फल

महुए का उपयोग

गरीब तबके के लोगों को महुए से साल भर के लिये ईंधन हेतु जलाऊ लकड़ी मिल जाती है। इसकी छाल, फल व फूलों में औषधीय गुण होने से इनका उपयोग आयुर्वेदिक उपचार में किया जाता है। भोजन करने के लिये इसके पत्तों से पत्तल व दोने बनाये जाते हैं। इसकी पत्तियाँ व फूल पोषक तत्वों से भरपूर होते हैं इसलिये ये पशुओं के लिये बेहतरीन पौष्टिक आहार होते हैं। इनको खिलाने से पशु में दूध की गुणवत्ता व मात्रा दोनों में ही बढ़त होती है। इसके सूखे फूलों से देशी मदिरा बनती है। ग्रामीण व वनवासी लोग सूखे फूलों का संग्रहण भी करते हैं। जरुरत पड़ने पर इनका उपयोग आपातकालीन भोजन के रूप में भी किया जाता है। इसके कच्चे फलों की बनाई सब्जी पौष्टिक एवं स्वादिष्ट होती है। इसके पके फलों का गूदा खाने में मीठा होता है। इसके बीजों (डोरमा) का तेल त्वचा की सौन्दर्यता, खाद्य पदार्थों के तलने, साबुन बनाने, वनस्पति मक्खन बनाने इत्यादि हेतु काम में लिया जाता है।

- महुए का फूल, फल, बीज, छाल, पत्तियों का आयुर्वेद में अनेक प्रकार से उपयोग किया जाता है।
- महुए का धार्मिक महत्व भी है। ये रेवती नक्षत्र का आराध्य वृक्ष है।
- महुए के बीज से तेल निकालने के बाद वह खली के रूप में पशुओं को खिलायी जाती है।
- महुए का तेल खाने में प्रयोग होता है।
- महुए के ताजे और सूखे फल से म्हुअरी (महुए की रोटी) बनायी जाती है जो अत्यन्त स्वादिष्ट होती है।
- महुए का फल पकने के बाद उसे खाया जाता है। कच्चे फलों से सब्जी बनायी जाती है।
- महुए से जैम, जैली बनाया जाता है।

महुआ बीज का तेल खाद्य, कपड़ा धोने का साबुन एवं अपमार्जक में स्नेहक के रुप में इस्तेमाल होता है। इसके तेल का प्रयोग त्वचा सम्बन्धी, गठिया, सिरदर्द आदि बीमारियों में किया जाता है। यह ऑक्सीकरण रोधी एवं रोगाणुनाशक गुणों से युक्त होता है। ओलिक एवं स्टीयरिक अम्ल की उपस्थिति एवं असंतृप्त प्राकृतिक वसा के कारण कृत्रिम मक्खन, प्रसाधन सामग्री, तेलीय खाद्य उत्पाद बनाने में महुए का तेल इस्तेमाल किया जाता है। महुए के फल, फूल, पत्ती, छाल की भाँति लकड़ी भी बहुमूल्य होती है। इमारती लकड़ी तथा अन्य लकड़ी से बनने वाले सामानों को बनाने में भी महुए की लकड़ी का प्रयोग होता है।

निष्कर्ष–महुआ में पोषक पूरक भोज्य पदार्थों के अलावा औद्योगिक एवं औषधीय उत्पाद हेतु आवश्यक तत्व उपलब्ध होते हैं। वर्तमान परिपेक्ष में जब वैश्विक बाजार में जैविक, प्राकृतिक, आयुर्वेदिक आधार पर निर्मित उत्पाद की माँग रासायनिक मिश्रणों की अपेक्षा बढ़ गई है। ऐसे में महुए के फल, फूल, बीज, छाल में पाये जाने वाले विभिन्न घटकों से निर्मित बहुउपयोगी दैनिक एवं औद्योगिक चिकित्सीय उत्पाद की माँग बढ़ना स्वाभाविक है। अतः व्यापार पक्तिं में अन्तिम पायदान में खड़ा व्यक्ति मजदूर, कृषक, मूल निवासी जो जीविकोपार्जन के लिए आवश्यक धन हेतु महुए का वृक्ष,

फलों एवं फूलों को संरक्षित करता है। उन्हें निश्चित रुप से इसका लाभ मिलेगा। अपने बहुउपयोगी गुणों के कारण महुआ वर्तमान परिपेक्ष में एक प्रमुख प्राकृतिक व्यापारिक उत्पाद है, जो आर्थिक रुप से पिछड़े परिवारों का, प्राथमिक स्तर पर आय अर्जन का अच्छा विकल्प साबित हो सकता है।

राहुल निषाद
शोध छात्र

जनवरी से जून, 2020 के अंतर्गत संस्थान द्वारा आयोजित प्रमुख कार्यक्रम

वन संवर्धन एवं प्रबंधन प्रभाग, वन अनुसंधान संस्थान के सौजन्य से दिनांक 16 से 17 जनवरी, 2020 तक ''भारत के संन्दर्भ में वानिकी प्रमाणन'' विषय पर दो दिवसीय प्रशिक्षण कार्यशाला का आयोजन किया गया जिसमें कुल 16 भारतीय वन सेवा के अधिकारियों ने भाग लिया।

दिनांक 29 जनवरी, 2020 को संस्थान के प्रमण्डल कक्ष में ''अंशधारकों हेतु वानिकी अनुसंधान का विस्तार'' विषय पर एक दिवसीय प्रशिक्षण कार्यशाला का आयोजन किया गया। प्रशिक्षण कार्यशाला का संचालन विस्तार प्रभाग, वन अनुसंधान संस्थान के द्वारा किया गया।

वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून में 71वां गणतंत्र दिवस बड़े ही हर्षोल्लास के साथ मनाया गया। इस अवसर पर कार्यक्रम के मुख्य अतिथि डॉ. एस. सी. गैरोला, महानिदेशक, भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् ने मुख्य भवन के प्रांगण में ध्वजारोहण किया। केन्द्रीय विद्यालय एफ.आर.आई. के छात्र–छात्राओं ने राष्ट्रगान व देशभक्ति के गीत गाए। डॉ. एस. सी. गैरोला ने सभी को 71वें गणतंत्र दिवस की बधाई दी। संस्थान के निदेशक, श्री ए.एस. रावत ने सभी उपस्थित लोगों को गणतंत्र का संकल्प दिलवाया। इस मौके पर आई.सी.एफ.आर.ई. व एफ.आर.आई. के कर्मचारियों व अधिकारियों को आई.सी.एफ.आर.ई. लाईफटाईम मेरीटोरियस सर्विस अवार्ड–2019 व आई.सी.एफ.आर.ई. आउटस्टेंडिग एम्प्लॉई अवार्ड–2019 से सम्मानित किया गया।

संस्थान के वन वनस्पति प्रभाग के सौजन्य से पादप वर्गीकरण के क्षेत्र में नवीन प्रवृत्तियों और भविष्य की कार्यनीति के व्यापक उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए दिनांक 12 फरवरी, 2020 को एक दिवसीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया।

वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून एवं काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बैंग्लोर के संयुक्त तत्वावधान तथा भारतीय विज्ञान संस्थान, बैंग्लोर के सहयोग से ''वानिकी का अध्ययन करने के लिए स्थायी भूखण्ड स्थापित करने की विधियाँ'' विषय पर 3 दिवसीय कार्यशाला का आयोजन किया गया। कार्यशाला में देश भर के लगभग 50 वैज्ञानिकों, अनुसंधान विद्वानों और वन अधिकारियों ने वनों की दीर्घ कालिक निगरानी के माध्यम से जलवायु परिवर्तन के अध्ययन से संबंधित मूद्दों पर विचार–विमर्श करने के लिए कार्यशाला में भाग लिया।

राष्ट्रीय विज्ञान दिवस

वन अनुसंधान संस्थान में दिनांक 28 फरवरी, 2020 (शुक्रवार) को राष्ट्रीय विज्ञान दिवस मनाया गया। इस अवसर पर वन अनुसंधान संस्थान के सभी संग्रहालय आम जनता के लिए निःशुल्क खुले रखे गए। इस मौके पर देहरादून के विभिन्न स्कूलों से आए छात्र छात्राओं ने संग्रहालयों का भ्रमण किया।

माननीय श्री ए.एस. रावत, महानिदेशक, भा.वा.अ.शि.प., देहरादून दिनांक 05 जून, 2020 को संस्थान के वरिष्ठ वैज्ञानिक डॉ. अजय ठाकुर द्वारा डिजाइन किया हुआ पेडल बेस्ड बेम्बू सैनीटाइजर (एफआरआई–एबीएसडी–1) का उद्घाटन करते हुए।

वन संवर्धन एवं प्रबंधन प्रभाग के द्वारा दिनांक 10 से 14 फरवरी, 2020 तक आयोजित 5 दिवसीय प्रशिक्षण कार्यक्रम में उपस्थित ए. एस. रावत, भा.व.से. तथा अन्य प्रतिभागी उक्त प्रशिक्षण कार्यक्रम में कुल 10 भारतीय अर्थशास्त्र सेवा के अधिकारियों ने भाग लिया, इस प्रशिक्षण कार्यक्रम का विषय ''वन अर्थशास्त्र'' रखा गया था।

पर्यावरण दिवस–2020

दिनांक 05 जून, 2020 को विश्व पर्यावरण दिवस पर आयोजित स्वच्छता अभियान में संस्थान परिसर को स्वच्छ करते हुए अधिकारी और कर्मचारी।

पर्यावरण दिवस के उपलक्ष्य पर केन्द्रीय विद्यालयों के विद्यार्थियों के लिए ऑनलाइन माध्यम से दो वर्गो में चित्रांकन प्रतियोगिता एवं निबंध प्रतियोगिता आयोजित की गई।

निबंध प्रतियोगिता में पुरस्कार प्राप्त प्रतिभागियों के नाम निम्न हैं:

क) कनिष्ठ वर्ग (कक्षा VI–VIII)

प्रथम– सूर्यवंश भंडारी, कक्षा–**VI**, के.वि. आईआईपी मोहकमपुर, देहरादून,
द्वितीय– बेरी साईं जगरूथी, कक्षा–**VII**, के.वि. एंड्रयूज गंज, नई दिल्ली
तृतीय– मेधावी मिश्रा, कक्षा–**VI**, के.वि. मती, कानपुर देहात
सांत्वना–1: प्रथम राजवंशी, कक्षा–**VII**, के.वि., दिलखुश कैंट, लखनऊ
सांत्वना–2: सयानी पॉल, कक्षा–**VII**, के.वि. वसंत कुंज, नई दिल्ली

ख) वरिष्ठ वर्ग (कक्षा IX–XII)

प्रथम– आकांक्षा राजपूत, कक्षा–**XII**, के.वि., नांगल भूर कण्डोली, हिमाचल प्रदेश
द्वितीय– दुर्गेश नयन, कक्षा–**X**, के.वि.,सं.1, एएफएस आदमपुर, जालंधर, पंजाब
तृतीय– अंशिका मिश्रा, कक्षा–**XII**, के.वि., रायबरेली, उत्तर प्रदेश
सांत्वना–1: गीतांजलि अवस्थी, कक्षा–**IX**, के.वि.,कानपुर कैंट (द्वितीय पारी)
सांत्वना–2: रश्मिता महापात्रा, कक्षा–**XII**, के.वि. सं.4, कंधार लाइन दिल्ली कैंट

05 जून, 2020 को पर्यावरण दिवस के उपलक्ष्य पर ऑनलाइन आयोजित चित्रांकन प्रतियोगिता के कनिष्ठ वर्ग (कक्षा VI–VIII) एवं वरिष्ठ वर्ग (कक्षा IX–XII) के पुरस्कार प्राप्त चित्र

कनिष्ठ वर्ग (कक्षा VI–VIII)

प्रथमः
प्रमा प्रकाश, कक्षा–VII,
के.वि., द्वारका
सेक्टर 5, नई दिल्ली

द्वितीयः
दिशा,
कक्षा–VIII,
के.वि., सं.–01,
शाहजानपुर, उत्तर प्रदेश

तृतीयः
प्रणव वत्सल,
कक्षा–VIII,
के.वि., सं. 4,
कंधार लाइन, करियप्पा
विहार, दिल्ली कंट

सांत्वना–01:
लक्ष्मी प्रधान,
कक्षा–VIII, के.वि., एएफएस,
तुगलकाबाद, नई दिल्ली

सांत्वना–02:
अर्निस कृष्ण,
कक्षा–VI, के.वि.,
गोमती नगर,
लखनऊ,
उत्तर प्रदेश

वरिष्ठ वर्ग (कक्षा IX–XII)

प्रथमः
अनुराग रमोला,
कक्षा–X, के.वि.,
ओ.एन.जी.सी
कौलागढ़ रोड, देहरादून

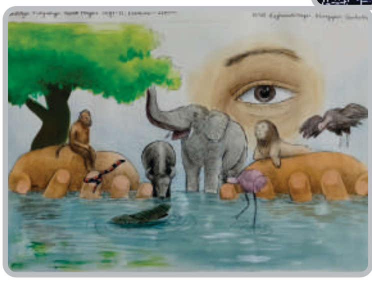

द्वितीयः
अभिनव आंनद,
कक्षा–XII
के.वि.,गोमती नगर,
लखनऊ

तृतीयः
हेमा,
कक्षा–X, के.वि., रानीखेत,
अल्मोड़ा

सांत्वना–01:
चहत समयाल,
कक्षा–IX, के.वि., सुरानुस्सी,
जालंधर, पंजाब

सांत्वना–02:
श्रेया वर्मा,
कक्षा–X, के.वि.,
सं. 3, एयर फोर्स
स्टेशन, चकेरी,
कानपुर